UNIVERSAL LIBRARY
OU_178776
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 P92K Accession No. P. G. H723

Author प्रेमचन्द.

Title कुत्ते की कहानी. 1947.

This book should be returned on or before the date last marked below.

द्वितीय संस्करण, जनवरी, १९४२
तृतीय संस्करण, दिसम्बर, १९४५
चतुर्थ संस्करण, जुलाई, १९४६
पंचम संस्करण, मई, १९४७

मूल्य ।।।)

मुद्रक—श्रीपवराय, सरस्वती प्रेस, बनारस ।

बच्चों से

प्यारे बच्चो ! तुम जिस संसार में रहते हो, वहाँ कुत्ते-बिल्ली ही नहीं, पेड़-पत्ते और ईंट-पत्थर तक बोलते हैं, बिलकुल उसी तरह जैसे तुम बोलते हो, और तुम उन सबों की बातें सुनते हो और बड़े ध्यान से कान लगाकर सुनते हो। उन बातों में तुम्हें कितना आनन्द आता है। तुम्हारा संसार सजीवों का संसार है। उनमें सभी एक-जैसे जीव बसते हैं। उन सबों में प्रेम है, भाईपन है, दोस्ती है। जो साधु-सन्तों को बरसों के चिन्तन और साधन से नहीं प्राप्त होती, वह तुम परमपिता के घर से लेकर आते हो। यह छोटी पुस्तक मैं तुम्हारी उसी आत्म-सरलता की भेंट करता हूँ। तुम देखोगे कि यह कुत्ता बाहर से कुत्ता होकर भीतर से तुम्हारा ही जैसा बालक है, जिसमें वही प्रेम और सेवा और साहस और सचाई है, जो तुम्हें इतनी प्रिय है।

बनारस,
१४ जुलाई, १९३६

प्रेमचन्द

कुत्ते की कहानी

बालको ! तुमने राजाओं और वीरों की कहानियाँ बहुत सुनी होंगी; लेकिन किसी कुत्ते की जीवन-कथा शायद ही सुनी हो। कुत्तों के जीवन में ऐसी बात ही कौन-सी होती है, जो सुनाई जा सके। न वह देवों से लड़ता है, न परियों के देश में जाता है, न बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीतता है ; इसी लिए भय है कि कहीं तुम मेरी कहानी को उठाकर फेंक न दो ; किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे जीवन में ऐसी कितनी ही बातें हुई हैं, जो बड़े-बड़े आदमियों के जीवन में भी न हुई होंगी ; इसी लिए मैं आज अपनी कथा सुनाने बैठा हूँ। जिस तरह तुम कुत्तों को दुत्कार दिया करते हो, उसी भाँति मेरी इस कथा को ठुकरा न देना। इसमें तुम्हें कितनी ही बातें मिलेंगी और अच्छी बातें जहाँ मिलें, तुरन्त ले लेना चाहिए।

जब मेरा जन्म हुआ, तो मेरी आँखें और कान बन्द थे ; इसलिए नहीं कह सकता कि बाजे-गाजे बजे, गाना-बजाना हुआ या नहीं। मुझे तो कुछ सुनाई न दिया। हाँ, जिस बिछावन पर मैं लेटा था, वह रूई की भाँति नर्म था। सर्दी ज़रा भी न लगती थी। मैं दिल में समझ रहा था, किसी बड़े घर में मेरा जन्म हुआ है ; लेकिन जब आँखें खुलीं, तो मैंने देखा कि एक भाड़ की राख में अपनी माता की छाती से चिपटा हुआ पड़ा हू। हम चार भाई थे, तीन लाल थे, मैं काला था। उस पर सबसे छोटा और सबसे कमज़ोर।

माता भी हम लोगों के पास कम रहती थीं। उन्हें खाने की टोह में इधर-उधर दौड़ना पड़ता था। वह रात-रात-भर जागकर गाँव की रक्षा करती थीं। क्या मजाल कि कोई अनजान आदमी गाँव में क़दम रख सके। दूसरे गाँव के कुत्तों को तो वह दूर ही से देखकर भगा देती

थीं। जब किसी खेत में कोई साँड़ घुसता, तो उसे दूर तक भगा आतीं; मगर इतना सब कुछ करने पर भी कोई उन्हें खाने को न देता था। बेचारी पेट की आग से जला करती थीं। उस पर हम लोगों की चिन्ता उन्हें और मारे डालती थी; इसलिए जब भूख सताती, तो कभी-कभी वह चोरी से घरों में घुस जातीं और खाने की जो चीज मिल जाती, लेकर निकल भागतीं। उन्हें देखते ही लोग मारने दौड़ते और घरों के द्वार बन्द कर लेते।

एक दिन बड़ी ठंड पड़ी। बादल छा गये, और हवा चलने लगी। हमारे दो भाई वह ठंड न सह सके, और मर गये। हम दो ही रह गये। माताजी बहुत रोईं; मगर क्या करतीं। गाँववालों को फिर भी उन पर दया न आई। आदमी इतने मतलबी और बेदर्द होते हैं, यह मैंने पहली बार देखा।

एक दिन गाँव में उत्सव था। एक बनिये के यहाँ ब्राह्मण-भोजन था। सैकड़ों आदमी जमा थे। पूरियाँ बन रही थीं। माताजी बार-बार उधर जातीं; पर दुत्कार पाकर भाग आती थीं। किसी को इतनी दया न आती थी कि एक टुकड़ा उनकी ओर फेंक दे। एक टुकड़ा दे देने से कुछ कमी न पड़ जाती; पर यह कौन समझाये। जब सब चीजें तैयार हो गईं, तो आँगन में पत्तल डाल दिये गये। लोग अपने-अपने आसन पर जा बैठे और भोजन परसा जाने लगा। उसी समय माताजी वहाँ पहुँचीं। हम दोनों भाई भी उनके साथ थे। द्वार पर ही एक आदमी ने दुत्कारा; मगर माताजी भागीं नहीं, पूँछ हिलाने लगीं और वहीं बैठ गईं। वह आदमी जब किसी काम से भीतर चला गया, तो माताजी भी दबे पाँव दालान में जा पहुँचीं। उन्हें देखकर चारों तरफ से धत्! धत्! का ऐसा कोलाहल मचा कि माताजी घबरा गईं। दो-तीन आदमी डंडे लेकर दौड़े। माताजी को अगर दालान से निकल जाने का रास्ता मिलता, तो वह उधर से बाहर निकल जातीं; लेकिन उधर लोग डंडे लिए खड़े थे; इसलिए माताजी बैठे हुए आदमियों के बीच से होकर मोरी के रास्ते बाहर निकल आईं।

मगर तमाशा तो देखिए कि माताजी के बाहर निकलते ही भोजन करनेवाले भी उठ खड़े हुए! जानते हो क्यों? माताजी के उधर से निकल जाने के कारण भोजन भ्रष्ट हो गया! विचार होने लगा कि क्या किया जाय। बेचारा बनिया फूट-फूटकर रोने लगा। कुछ लोग कहते थे, इसमें दोष ही क्या है, कुतिया ने पत्तलों में मुँह तो डाला नहीं, छूने से क्या होता है; किन्तु जो बहुत कुलीन थे, वे कुतिया का बीच से निकल जाना ही भोजन को भ्रष्ट करने के लिए काफ़ी समझते थे। आख़िर इन्हीं कुलीनों की जीत हुई और सारा भोजन अछूतों को बाँट दिया गया। उस दिन माताजी ने खूब पेट-भर खाया। ऐसा सुख उन्हें जीवन में कभी न मिला था।

लेकिन उन बेचारी के भाग्य में सुख लिखा ही न था। भोजन करके ज़रा लेटी ही थीं कि बनिया डंडा लिये आ पहुँचा और लगा पीटने। माताजी को भागने का अवसर न मिला। ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगीं। उनका विलाप सुनकर पत्थर भी पसीज जाता; पर उस निर्दयी को ज़रा भी दया न आई। मैं मन में कुढ़ रहा था। अपना कुछ वश होता, तो बनिये राम को इस बेदर्दी का मज़ा चखा देता; लेकिन ज़रा-सा बच्चा क्या करता! बारे यह विलाप सुनकर कुछ लोग जमा हो गये और समझाने लगे—जाने दो भाई, भूख में आदमियों की बुद्धि तो भ्रष्ट हो ही जाती है, यह तो पशु है, इसे क्या मालूम, किसका फ़ायदा हो रहा है, किसका नुक़सान। अब तो जो हो गया, सो हो गया, इसे मारकर क्या पाओगे। बनिये के चित्त में यह बात बैठ गई और माताजी की जान छूटी।

उसी दिन शाम को एक बटोही गाँव में आकर ठहरा। उसने एक पेड़ के नीचे उपले जलाये और हाँड़ी में दाल चढ़ाकर आटा गूँधने लगा। आटा गूँध चुकने पर उसने हाँड़ी उतार दी और सामने के कुएँ पर पानी लेने चला गया। गूँधा हुआ आटा पत्तल पर रखा हुआ था। इतने में माताजी घूमती हुई वहाँ पहुँच गईं और शायद यह समझकर कि मुसाफ़िर ने इतना जूठन छोड़ दिया है, उन्होंने आटा उठा लिया

और चम्पत हो गई । मुसाफिर ने कुएँ पर से ही धत्-धत् करना शुरू किया ; लेकिन माताजी ने फिर भी न देखा । बेचारा माथे पर हाथ धरकर रोने लगा । आज तीन दिनों का भूखा, थका-माँदा, उस पर भगवान् की यह लीला ! दो-तीन आदमियों ने समझाया—भाई, तुम्हारा तो चार-छः आने का नुकसान हुआ, कल तो इसने हजारों पर पानी फेर दिया ।

मुसाफिर ने कहा—मैं क्या जानता था कि यह चांडालिन घात में बैठी हुई है !

बूढ़े चौधरी बोले—जान पड़ता है, आज का तुम्हारा भोजन उसी के भाग्य में था । मसल है, 'शाह की मुहर आने-आने पर, खुदा की मुहर दाने-दाने पर ।' फिर से बना-खा लो ।

बेचारे मुसाफिर ने फिर से चौका लगाया, और भोजन बनाने लगा । चौधरी वहीं बैठे रहे । मुसाफिर ने पूछा—बाबा, मैं आपकी उस कहावत का मतलब नहीं समझा । जरा समझा दीजिए ।

चौधरी बोले—एक फकीर यही कहकर, सबके दरवाजे पर भीख माँगता फिरता था—"शाह की मुहर आने-आने पर, खुदा की मुहर दाने-दाने पर ।'

एक मनचले रईस ने उस फकीर से कहा—साईं, यह बात समझ में नहीं आती, भला दानों पर कैसी मुहर ?

साईं ने कहा—नहीं बेटा, खुदा जिसको जो दाना देना चाहेगा, वही पा सकता है । दूसरा हरगिज नहीं पा सकता । इसकी जब चाहो तब परीक्षा कर सकते हो ।

रईस ने कहा—लीजिए, मैं अभी परीक्षा लेता हूँ । अगर यह बात सच निकली, तो मैं आपका गुलाम हो जाऊँगा ।

रईस ने एक ज्वार का दाना हाथ में लिया और कहा—देखिए, मैं इसे अपने मुँह में डालता हूँ । अगर खुदा की इस पर मुहर है, तो किसी और को दे दे ।

यह कहकर उसने दाने को अपने मुँह में फेका ; पर दाना मुँह में

न जाकर जमीन पर गिर पड़ा, और एक चिड़िया उसे उठाकर ले गई।

रईस भौचक्का-सा रह गया। बस, आप भी याद रखिए कि न तो कोई किसी को खिलाता है, और न किसी का खाता है, सबको खिलानेवाला ईश्वर है।

[२]

जब हम दोनों भाई जरा बड़े हुए, तो लड़कों ने हमें खेलाना शुरू किया। मैं बहुत खूबसूरत था। मुझे एक पण्डितजी का लड़का पकड़ लाया। मेरे भाई को एक डफाली का लड़का पकड़ ले गया। मैं पण्डितजी के घर पलने लगा। मेरा भाई डफाली के घर। उसे जकिया कहते थे और मुझे कल्लू।

जाड़े का मौसिम था। जब सब लड़के धूप में जमा हो जाते, तो हमें गोद में ले लेते और चूमते। कोई कहता, हमारा बच्चा है। कोई कहता, हमारा मुन्ना है। कोई लड़का एक कान पकड़कर उठाता और कहता, देखो भाई, चोर है या साह? जब तक कान दर्द न करते, मैं न बोलता, बस सब कहने लगते, फेंको-फेंको यह चोर है; मगर जब कान दुखने से चिल्ला उठता, तो सब साह-साह कहकर हँस पड़ते। प्रायः यह खेल दिन में सैकड़ों बार होता। कोई हमारे अगले पैरों को उठाकर कहता—मेरा मुन्नू तो दो पैरों से चलता है। यों चलाये जाने से हमारे पैर दर्द करने लगते थे; पर करते क्या। कभी-कभी छोटे-बड़े लड़के छोटे बच्चों को मेरी पीठ पर बैठाकर कहते—मेरा लल्लू हाथी पर बैठा है। भला मैं उन लड़कों का बोझ क्या उठाता। जब चिल्लाने लगता, तो जान बचती। कोई-कोई लड़के तो मेरे गले में रस्सी बाँधकर दौड़ाते। भला मैं उनके बराबर कैसे दौड़ता; लेकिन वे अपनी धुन में मुझे घसीटते हुए ही ले जाते थे, इससे सारा बदन दुखने लगता था; मगर मुझ गरीब का वहाँ कौन मददगार बैठा था! कभी-कभी लड़के मुझे पासवाले गड्ढे में डाल देते और मेरी तैराकी का तमाशा देखते। जब मैं बाहर निकलने के लिए पानी में छटपटाने लगता, तो लड़के हँस-हँसकर कहते—देखो, कल्लू कैसा तैरता है! उस समय मैं

डूबने-डूबने हो जाता था। पाँव ज़ोर-ज़ोर से चलता हुआ किसी तरह किनारे आ जाता, और मारे ठंड के काँपने लगता। जब धूप लगने से देह में कुछ गर्मी आती, तो कोई शैतान लड़का बोल उठता, अबकी मेरी बारी है। सुनते ही मेरी जान-सी निकल जाती; मगर भागकर जाता कहाँ। कोई फिर पानी में डाल देता। क्या बतलाऊँ कि उस समय कितना गुस्सा आता। बार-बार यही जी में आ जाता था कि कोई इन दुष्टों को भी इसी तरह डुबकियाँ देता, तो इनकी आँखें खुलतीं। हम दोनों भाइयों में से दुखी तो एक भी न थे; पर जकिया की दशा मेरी दशा से अच्छी थी। पण्डितजी के यहाँ मुझे रूखा-सूखा भोजन मिलता था और वह भी बहुत कम; इसलिए मुझे दूसरे द्वारों का चक्कर लगाना पड़ता था।

डफाली मांस का प्रेमी था। रोज़ाना उसके घर मांस पका करता था; इसलिए जकिया को काफ़ी भोजन मिल जाता था; उसे किसी दूसरे दरवाज़े पर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। कुछ तो बेफ़िक्री और कुछ पूरी खुराक मिलने पर वह दिन-दिन ताक़तवर और तन्दुरुस्त बनने लगा। मैं कभी-कभी भूख से तंग आकर डफाली के दरवाज़े पर पहुँच जाता कि शायद वहाँ कुछ मिल जाय। सोचता, आख़िर जकिया भी अपना ही खून है, उससे आरज़ू-मिन्नत करूँगा, तो ज़रूर कुछ-न-कुछ दे देगा। फिर उसका कोई नुक़सान भी तो नहीं है। मैं उसके खाने में हिस्सा लेना नहीं चाहता था, केवल उसका जूठन चाहता था; पर वह मेरी परछाईं देखते ही गुर्राकर मुझ पर ऐसा झपटता, जैसे मैं उसका दुश्मन हूँ। वह था मुझसे ताक़तवर; इसलिए मैं उसका सामना न कर सकता था। वह दाँतों से मुझे खूब काटता और नीचे गिराकर पंजों से खसोटता। जब मैं ज़ोर से चिल्लाने लगता और पूँछ सिकोड़ लेता, तब कहीं जान बचती थी। उठकर ज्यों ही भागना चाहता कि डफाली कह उठता—पण्डित का भग्गू कुत्ता वह भागा! वह भागा!! इस पर मुझे बहुत ग्लानि होती थी। मैं फिर जाकर जकिया से उलझ पड़ता, और इतनी मुस्तैदी से लड़ता कि भूख का

ख़याल ही न रहता। मेरी मुस्तैदी देखकर देखनेवाले कहते—वाह कल्लू! वाह! शाबाश!! इससे तबीयत और भड़क जाती थी। और भी ज़ोर लगाता। लेकिन आखिर मुझे भागना ही पड़ता था। तब सब तालियाँ बजाकर मुझ पर हँसने लगते। जोश ठंडा होने पर देखता तो लहू-लुहान हो गया हूँ। महीनों जाकर कहीं घाव अच्छे होते थे घाव अच्छा होने पर यही जी चाहता कि चलकर जकिया को पछाड़ूँ और पण्डितजी की बदनामी मिटाऊँ; मगर अपनी हालत देखकर रह जाता।

एक दिन मैं जान पर खेलकर जकिया से उलझ पड़ा। वह भी पूरे जोश के साथ मुझसे लड़ने लगा। संयोग से पण्डितजी भी वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचते ही और लोगों ने कहा—कल्लू भग्गू कुत्ता है, कभी भी जकिया का सामना नहीं कर सकता। इस पर मैंने देखा कि पण्डितजी का चेहरा फीका पड़ गया है। तब तो मैंने निश्चय कर लिया कि आज चाहे जान रहे या जाय; मगर जकिया को जरूर पछाड़ूँगा। कुछ ऐसे जीवट से लड़ा और ऐसे दाँव पेंच खेला कि बचा जकिया को छठी का दूध याद आ गया। देखनेवाले कहने लगे कि भाई, आज तो कल्लू ने कमाल कर दिया। ठीक है, मालिक को देखकर सबकी छाती बढ़ती है। जकिया डफ़ाली को देख-देखकर ही इसे रोज पछाड़ता था आज पण्डितजी को देखकर कल्लू ने नीचा दिखाया। मैंने देखा पण्डितजी का चेहरा उस समय खिल उठा था, मानों मैंने उनकी लज्जा रख ली। अब उन्होने मेरी खुराक कुछ बढ़ा दी। उधर जकिया पर डफ़ाली और भी तवज्जुह करने लगा।

एक दिन की बात है कि माताजी डफ़ाली के दरवाज़े पर पहुँच गईं। उस समय जकिया वहाँ मौजूद न था। डफ़ाली ने माताजी की दीन दशा देखकर एक टुकड़ा फेंक दिया। ज्योंही माताजी टुकड़ा उठाने को आगे बढ़ीं कि जकिया पहुँच गया और माताजी पर टूट ही तो पड़ा। संयोग से वहीं पर मैं भी पहुँच गया। फिर क्या था, जकिया से जान बचाकर माताजी मुझसे भिड़ गईं। मैं तो उन पर वार करना नहीं

चाहता था ; लेकिन वे पूरी ताक़त से मुझ पर वार करने लगीं। उस समय मुझे बड़ी हँसी आती थी। पेट भी क्या चीज है, इसके लिए लोग अपने-पराये को भूल जाते हैं। नहीं तो अपनी सगी माता और अपना सगा भाई क्यों दुश्मन हो जाते। यह तो हम जानवरों की बातें हैं। मनुष्यों की ईश्वर जाने।

[३]

मेरे पण्डितजी के घर अनाज बहुत होता था। घर कच्चा था ; लेकिन चूहों ने अपना अड्डा जमा लिया था। उनके उपद्रव से घरवालों का नाकोंदम था। वे लोग चाहते थे कि चूहेदानी लगाकर इनका सर्वनाश कर दिया जाय। मगर पण्डितजी यह कहकर टाल देते थे कि चूहे गणेशजी के वाहन हैं। इन्हें तकलीफ न देनी चाहिए. इनके खाने से कितना अनाज कम हो जायगा? उनका विश्वास था कि चूहे जितना ग़ल्ला नुक़सान करते हैं, उनका चौगुना श्री गणेशजी की दया से उपज में बढ़ जाता है; इसलिए जब वह किसी को चूहेदानी लगाते देखते, तो उससे पचासों बातें कहते।

पण्डितजी की धाक लोगों पर खूब बैठ गई। जब कहीं देवताओं की भक्ति की चर्चा होती, तो पण्डितजी का नाम पहले लिया जाता था। कैसे सज्जन हैं कि इतना नुकसान सहने पर भी चूहों को नहीं मारते! नहीं तो लोग आदमी की जान तक ले लेते हैं।

जब तक चूहे अनाज की लूट मचाते रहे, तब तक तो पण्डितजी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे; लेकिन जब उनके वार कपड़े-लत्ते पर भी होने लगे, तो उनके आसन डोल गये। जाड़ों के कपड़े कुछ सन्दूकों में रखे हुए थे, कुछ अलगनियों पर। गर्मियों में किसी ने उनकी परवा न की। बरसात में जब उन्हें धूप में डालने के लिए निकाला गया, तो सारे कपड़े कटे पड़े थे। चूहों ने लकड़ी की सन्दूक तक काट डाली थी। पण्डितजी की आँखों में खून उतर आया। चूहों ने एक-एक चीज में हजारों छेद कर दिये थे। दो-ढाई सौ रुपये पर पानी फिर गया था; फिर तो पण्डितजी ने ठान लिया कि जैसे भी होगा, इन चूहों का सर्वनाश

करके ही छोड़ूँगा। उसी दिन एक बिल्ली पाली और तीन-चार चूहेदानियाँ मँगवाईं। फिर क्या था? रोजाना चूहे फँसने लगे। मुझे भी विनोद का मसाला मिल गया। यों तो मैं सच्चा हिन्दू और पूरा ब्राह्मण हो गया था; क्योंकि विशेषकर ब्राह्मण ही का अन्न-जल खाना-पीना पड़ता था। मांस पर रुचि ही न होती थी; लेकिन शिकार खेलने में बड़ा मजा आता था। मजा क्यों न आता, यह तो मेरी खानदानी बात थी।

जब पण्डितजी चूहेदानी खोलते, उस समय 'कल्लू-कल्लू' पुकारते। मैं कहीं पर भी होता, तीर की तरह वहाँ पहुच जाता था। उस समय मैं जो खिलवाड़ करता था, वह देखने ही लायक होता था। चूहों को खिला-खिलाकर जान से मार डालता था; पर खाता न था।

मगर भाई जकिया पक्का मुसलमान था, रोज मांस खाता। वह भी उस शिकार में शामिल हो जाता था और कभी-कभी माताजी भी पहुँच जाती थीं। उन दिनों उनका खूब पेट भरने लगा। फिर तो मन-ही-मन हम लोगों को आशीर्वाद देने लगीं। शायद उन्हें पिछले बच्चों की याद भी आने लगी हो। यदि वे भी जीते होते, तो उनकी खूब सेवा करते। भाई साहब के जी में आता, तो दो-एक चूहों को पेट में रख लेते, मगर मैं तो बाबा कालभैरवजी की शपथ खाकर कहता हूँ कि सूँघता भी न था।

उस समय चूहों की जान लेने में हम लोगों को जरा भी दया न आती थी। यह खयाल भी न होता था कि इनमें भी जान है। अब मैं सोचता हूँ, तो मालूम होता है कि बच्चे जो हम लोगों को अपने विनोद के लिए कष्ट देते थे, वह कोई निर्दयता का काम नहीं करते थे। विनोद में इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। पण्डितजी बहुत खुश होते, जब हम लोग चन्द मिनटों में पचासों चूहों को सदा के लिए बेहोश कर देते। उस समय पण्डितजी पर मुझे बहुत हँसी आती थी। अब इनके गणेशजी क्या हुए! क्या अब ये चूहे गणेशजी के वाहन नहीं हैं? क्या अब इस हत्या से नाराज होकर गणेश भगवान्

पण्डितजी को दण्ड न देंगे ? वाह, क्या समझ है ! इससे तो यही मालूम होता है कि जिस बात से लोगों को नुकसान तो कम होता है और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ती है, उसे तो लोग हँसते-हँसते बर्दाश्त करते हैं ; लेकिन जब अधिक हानि पहुँचती है, तो सब प्रतिज्ञा टूट जाती है।

[४]

जिस गड्ढे में फेंक-फेंककर मुझसे लड़के खेलते थे, उसी में गाँव के सभी छोटे-बड़े नहाते-धोते थे। गड्ढा था भी बहुत गहरा। इसी लिए बारहों महीना पानी भरा रहता था। कच्चा होने पर भी उसका पानी स्वच्छ था। पण्डितजी की स्त्री अपने छोटे बच्चे को रोजाना सावधान करती थीं कि खबरदार, उस गड्ढे की ओर कभी न जाना, नहीं तो डूब जाओगे। प्रायः सभी माँ-बाप अपने बच्चों को ऐसी चेतावनी देते रहते ; मगर लड़के कब मानने लगे। माँ-बाप की नजरें बचाकर गड्ढे पर पहुँच ही जाते और तरह-तरह के खेल खेलते। कोई पानी में कत्तल फेंकता, कोई मेढकों पर निशाना लगाता, कुछ सयाने लड़के पानी में कूद जाते और तैरने का अभ्यास करते।

होनहार को कौन रोक सकता है। गाँव के कुछ लड़के गड्ढे में तैर रहे थे। पण्डितजी का छोटा लड़का भी पहुँच गया। पहले तो वह किनारे पर ही खेलता रहा ; मगर उसके जी में आया कि जरा मैं भी तैरूँ। आगे बढ़ा ही था कि पाँव फिसल गये और डूबने लगा। सब लड़के घबड़ाकर चिल्लाने लगे—'लड़का डूबा, लड़का डूबा !' मगर किसी की निकालने की हिम्मत न पड़ती थी। अगर कोई सयाना होता, तो कुछ कोशिश भी करता। यों तो डूबते हुए को निकालने में सभी डरते हैं। डूबनेवाला बचानेवाले को इस तरह पकड़ लेता है कि दोनों डूबने लगते हैं। इस काम के लिए बहुत होशियार आदमी की जरूरत होती है। यही बात वहाँ भी हुई। पण्डितजी का बड़ा लड़का संयोग से नहाने आ रहा था। भाई को डूबते देखा, तो तुरन्त कूद पड़ा। पर छोटे लड़के ने बड़े लड़के को इस प्रकार पकड़ लिया कि दोनों डूबने लगे। फिर तो लड़कों ने और भी शोर मचाया। और बात

की बात में गाँव-भर में शोर मच गया—रामू और श्यामू दोनों डूब रहे हैं, चलो निकालो, नहीं तो एक भी न बचेगा। चन्द मिनटों में गड्ढे पर मर्द और औरतों की भीड़ लग गई। पर कूदने में सब पसोपेश कर रहे थे। इतने में मैं भी वहाँ पहुँच गया। सारी बातें चट समझ में आ गईं। तुरन्त पानी में तीर की तरह घुसा। उस समय प्रायः दोनों लड़के डूब चुके थे। सिर्फ़ ज़रा-ज़रा बाल दिखाई पड़ रहे थे। मैंने दाँतों से उनके बाल पकड़ लिये और पलक मारते किनारे पर खींच लाया। लोग मेरा यह साहस देखकर दंग रह गये। पण्डितजी उस समय किसी काम से बाहर गये थे। संयोग से वे भी उसी समय आ गये और आदमियों की भीड़ देख बाहर-ही-बाहर वहाँ पहुँच गये। क्षण-भर में उन्हें सब बातें ज्ञात हो गईं। फिर तो उन्होंने मुझे उठाकर छाती से लगा लिया। पण्डितजी के आने के पहले ही लोगों ने लड़कों के पेट से पानी बाहर कर दिया था। वे स्वस्थ हो गये थे। अब तो गाँव-भर में मेरी खूब तारीफ होने लगी। यह कुत्ता पूर्व जन्म का कोई देवता है। किसी बात से चूका और कुत्ते का जन्म पा गया। कोई कहता, नहीं, इस पर भैरवनाथ की सवारी है। देवताओं की इच्छा ही तो है, जिस पर रीझ जायँ। उस दिन से पण्डितजी मुझे अपनी जान से भी अधिक प्यार करने लगे। अब मुझे पेट के लिए किसी दूसरे के दरवाजे पर नहीं जाना पड़ता था।

उस समय जकिया भी वहाँ मौजूद था। उसकी मूर्खता तो देखिए, जिस समय लड़कों को निकालकर मैं बाहर आ रहा था, वह बड़े कर्कश स्वर में हाँव-हाँव चिल्ला रहा था। उस पर कुछ लोगों ने उसे ढेले मारकर भगा दिया। ठीक ही था, कहाँ तो घबराये हुए लोग लड़कों की जान बचाने की कोशिश कर रहे थे, कहाँ यह व्यर्थ चिल्ला रहा था। डफाली उसकी यह हरकत देखकर चिढ़ गया। चिढ़ता क्यों न ? उसको तो यह उम्मेद थी कि मेरा कुत्ता कभी नाम करेगा; उसने उसे खिलाने-पिलाने में कोई कसर न रखी थी; मगर वहाँ पर सबके मुह से जकिया के लिए दुर-दुर निकल रहा था। उसी दिन से न जाने

Post Graduate Library

क्यों वह मुझसे विशेष प्रेम करने लगा। जहाँ देखता, उठा लेता और घण्टों तक मेरी गर्दन सहलाता। इस पर उसे मैं धन्यवाद देना चाहता था ; पर सिवा पूँछ हिलाने के और क्या कर सकता था। अब उसकी आँख ज़किया की ओर से धीरे-धीरे फिरने लगी थी। मैं अपने भाई से बैर नहीं करना चाहता था ; लेकिन ज़किया मेरी जान का दुश्मन हो गया। जहाँ देखता, मुझसे भिड़ जाता। मज़बूत था ही, मुझे हार माननी पड़ती।

(५)

अब पण्डितजी जो कुछ लाते, उसमें अपने लड़कों की तरह मेरा भी हिस्सा लगाते। मैं भी हर वक्त पण्डितजी के साथ-ही-साथ रहता था। वह किसी काम से बाहर जाते, तो मुझे बहुत दुःख होता। जब वह लौटकर आ जाते, तो पूँछ हिला-हिलाकर नाचने लगता। इससे शायद वह भी खिल उठते ; क्योंकि उनके चेहरे पर प्रसन्नता की एक गहरी झलक दिखाई पड़ती थी।

एक दिन पण्डितजी के मटर के खेत में एक गड़ेरिये की भेड़ें पड़ गईं। पण्डितजी ने देखा, तो उसे डाँट दिया। कई दिनों के बाद गड़ेरिये ने फिर वही शरारत की। अबकी पण्डितजी ने डाँट-फटकार के बाद दो-तीन थप्पड़ भी जमा दिये। मैंने समझा कि गड़ेरिया अब ऐसी भूल न करेगा ; मगर दो-तीन दिन के बाद उसने फिर अपनी भेड़ें पण्डितजी के खेत में डाल दीं। उस दिन पण्डितजी को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने उसे ज़मीन पर पटककर लातों और घूसों से खूब मारा। मैंने भी गुस्से में आकर उसे खूब काटा, नोंचा।

उस दिन तो गड़ेरिया चला गया। दूसरे दिन से वह मेरी खोज में रहने लगा। मुझे पण्डितजी के साथ देखता, तो होंठ चबाकर रह जाता। मैं भी ताड़ गया था कि यह मुझे अकेला पाते ही अवश्य वार करेगा ; इसलिए मैं पण्डितजी का साथ कभी भूलकर भी न छोड़ता था।

अब गड़ेरिये की भेंड़ पण्डितजी के खेत में कभी न पड़ती थी। गड़ेरिया अब बदला लेने पर तुला हुआ था।

एक दिन की बात सुनो—पण्डितजी की ईख की खेती बहुत अच्छी थी। गाँववाले अक्सर कहा करते थे कि इस साल पण्डितजी सबसे बाज़ी मार ले जायँगे। गड़ेरिये ने कहा, इस खेत में आग लगा दो, सारी कसर निकल जायगी। आधी रात के समय खेत पर पहुँच ही तो गया। बचा यह नहीं जानते थे कि यहाँ पर भी मेरा ही पहरा रहता था। ज्यों ही आग की चिनगारी ईख में फेंककर भागने का विचार किया कि मैंने झपटकर उसके पाँव पकड़ लिये। वह अकचका-कर गिर पड़ा। क्यों न गिर पड़ता, चोरों के कलेजा ही कितना! बचा ने भागने की बहुत कोशिश की; मगर एक न चली। खैरियत यह थी कि खेत गाँव से थोड़ी ही दूर पर था। एकाएक ज्वाला उठी, तो गाँव-वाले चटपट पहुँच गये। मुझे गड़ेरिये का पैर पकड़े देखकर लोग समझ गये कि यह इसी की बदमाशी है। जो आता, गड़ेरिये की पूजा करके तब आग बुझाने जाता। उस बदमाश की ऐसी मरम्मत हुई कि मरते-मरते हो गया। इतने पर भी लोगों का सन्तोष न हुआ। सलाह हुई कि इसे थाने ले चलो; मगर पण्डितजी ने उसे यों ही छोड़ दिया। लोगों से कहा—जब तक ईश्वर न बिगाड़ेगा, आदमी कुछ नहीं कर सकता, मसल है—

'जाको राखें साइयाँ मार न सकिहैं कोय।'

गाँववालों को पण्डितजी के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि ऐसी दशा में उसे पूरा दण्ड दिलाये बिना कोई भी न छोड़ता। मैं तो कहता हूँ कि यदि सब ईख जल गई होती और गड़ेरिया पकड़ लिया जाता, तो पण्डितजी जीता न छोड़ते; मगर यहाँ तो दयालुता का सिक्का जमाना था। क्यों न क्षमा कर जाते। नहीं तो कहलाने को तो पण्डितजी ब्राह्मण थे; पर दरवाजे पर भिखमंगों को भीख नहीं मिलती थी।

उस दिन से पण्डितजी मुझ पर और प्रेम करने लगे। सारे गाँव

पर मेरी धाक बँध गई, लेकिन वह नर-पिशाच इसी फ़िक्र में रहता कि कब इसका अन्त कर दूँ। रात-दिन मेरी ही खोज में रहता; मगर ईश्वर की दया से मेरा बाल भी बाँका न कर सका।

आख़िर उसे एक तरकीब सूझ गई। वह ज़किया को खूब खिलाने-पिलाने लगा। उस समय डफ़ाली ने ज़किया को अपने घर से प्रायः निकाल ही दिया था। कभी-कभी दूसरे कुत्तों की तरह उसे भी कौर दे देता था। बात यह थी कि एक दिन एक पुलीस का आदमी उस डफ़ाली के दरवाज़े पर रात को गश्त करने आया था। उस समय ज़किया ने उसे काट खाया था। पुलीस के आदमी ने डफ़ाली को बहुत तंग किया था, तभी से उसे ज़किया से घृणा हो गई थी। उसकी तो ऐसी इच्छा हो गई थी कि ज़किया दरवाजे पर भी न रहे; मगर बहुत दिनों की मुहब्बत के सबब से उसे कुछ-न-कुछ देना ही पड़ता था।

ज़किया ताक़तवर तो बहुत था; मगर उसे भले-बुरे का ज्ञान न था। जभी चाहता, बेसुरा राग छेड़ देता। कभी-कभी देवमन्दिरों में हड्डियाँ रख आता। इससे गाँववाले भी चिढ़ गये थे। गुण उसमें यही था कि वह मजबूत बहुत था। क्या मजाल कि कोई दूसरे गाँव का कुत्ता आ जाय, गीदड़ों की तो उसे देखते ही नानी मर जाती थी। हिरन और नीलगायें जो पहले खेतों को तहस-नहस कर देती थीं, अब गाँव में आने का नाम न लेतीं। एक बन्दर ने गाँव में बड़ा उत्पात मचा रखा था। बच्चों के हाथ से रोटी छीन लेता। औरतों को रास्ते में रोक लेता, और जो कुछ उनके पास होता, वह लिये बिना पिण्ड न छोड़ता। लोगों की राह चलनी मुश्किल हो गई थी। गाँव-भर की खपरैल उलट दी थी। ज़किया ने उसे ऐसा झँझोटा कि बचा ने फिर सूरत ही न दिखाई।

हाँ, तो गड़ेरिये ने ज़किया को इसी इरादे से खिलाना-पिलाना शुरू किया कि मुझसे बदला ले; मगर ज़किया भी छटा हुआ था। जो हमेशा मछली और मांस का आदी था; वह रूखे-सूखे सत्तू पर कैसे टिक सकता। गड़ेरिये की आँख बचाकर भेड़ों पर हाथ साफ़ करता।

इस पर एक दिन गड़ेरिये ने उसे बाँधकर खूब पीटा। तब से वह उसके यहाँ से भाग गया। अब वह किसी का नहीं था। कहलाता तो था डफ़ालीवाला कुत्ता; मगर डफ़ाली से उसका कुछ भी सम्बन्ध न था।

अब गड़ेरिये ने निश्चय किया कि जैसे भी होगा, मुझे जान से मार डालेगा, चाहे उसकी जान रहे या जाय। एक दिन उस कम्बख्त ने जान पर खेलकर वार कर ही तो दिया। बात यह थी कि पण्डितजी मन्दिर में पूजा कर रहे थे और मैं नीचे बैठा झपकी ले रहा था। पण्डितजी आँख मूँदकर श्री शिवजी का ध्यान कर रहे थे। पूरी ताक़त के साथ एक लाठी जमा ही तो दी। लाठी ऐसी घात से लगी कि मेरे मुँह से एक चीख़ निकल गई। फिर मुझे कोई खबर न थी कि मैं कहाँ हूँ। जब होश आया, तो अपने को जानवरों के अस्पताल में पाया। कुछ दिनों में अच्छा होकर अस्पताल से चला आया; मगर मेरी कमर बहुत कमजोर हो गई थी। जब-जब पूर्वी हवा चलती, जान ही निकल जाती थी। पीछे पण्डितजी से पता लगा कि वे मेरी उस चीख़ को सुनकर पूजा छोड़ बाहर निकल आये। देखा कि गड़ेरिया दूसरा वार करना चाहता है। झट दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसकी लाठी से उसे खूब पीटा। तब उसका चालान कराके छः महीने के लिए सजा करवा दी। फिर तो जेल में उसकी जो दुर्गति या सुगति हुई होगी उसका अनुभव तो वही करेगा, जो कभी जेल गया होगा। ये सब बातें पण्डितजी अपने मित्रों से कहते थे, तो मैं सुनता था। उस समय से पण्डितजी पर मुझे बहुत ही गर्व रहने लगा। मेरा विश्वास था कि पण्डितजी के रहते हुए मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। कभी मैं पछताता कि आदमी क्यों न हुआ।

मेरी माताजी की दशा दिन-दिन ख़राब होती जाती थी। भूख, चिन्ता, मार, इन सब कारणों ने मिलकर उन्हें पागल बना दिया। एक खँडहर में अकेली पड़ी रहतीं। मैं एक बार उन्हें देखने गया था। मुझ पर इतनी तेजी से झपटीं कि मैं भाग न जाऊँ तो मुझे जरूर काट खायँ। उधर से लोगों ने आना बन्द कर दिया। संयोग की बात,

गड़ेरिया उसी दिन सजा भुगतकर निकला था। एकाएक उसी दिन रास्ते में माताजी मिल गईं और उसके बहुत बचाने पर भी काट खाया। उनके दाँतों में इतना विष था कि दो-तीन दिनों में ही गड़ेरिया मर गया। किसी की मृत्यु पर खुश होना, चाहे वह अपना कट्टर शत्रु ही क्यों न हो, बुरी बात है; मगर मैं उछलने लगा। गड़ेरिये के मरने से मुझे बहुत खुशी हुई। अब मेरा कोई वैरी न था।

मगर इस खुशी ने मुझे जितना हँसाया, उतना ही इस खबर ने रुलाया भी कि उसके दो ही तीन दिन बाद पुलीस ने माताजी को गोली मार दी। मैं कई दिन तक दुखी रहा। भला संसार में ऐसा कौन होगा, जिसे माता के मरने का मार्मिक शोक न हो!

अब जकिया के सिवा कोई मेरा सगा न रह गया था। उस समय कभी-कभी मैं सोचता, देखें हम दोनों का अन्त कैसे होता है। यद्यपि उस समय मैं खाने-पीने से सुखी था और जकिया दुखी; मगर सन्तोष इतना ही था कि कहने को भाई तो है। कभी उसके भी दिन फिरेंगे! पहले उसने सुख भोगे, मैंने दुःख झेले। अब मैं सुख भोग रहा हूँ, और वह दुःख। किसी के दिन बराबर नहीं जाते।

जब कभी जकिया पण्डितजी के दरवाजे पर आता, तो मैं कभी चिढ़ता न था। वह तो डरता था कि कहीं यह बदला न ले; मगर मैं वहाँ से टल जाता कि वह निश्चिन्त होकर खा ले। कभी-कभी मुझे अधिक भोजन मिल जाता, तो मैं मुँह में रखकर जकिया के पास पहुँचा देता। दिखाव में तो प्रसन्न रहता; मगर दिल में मुझसे बराबर जला करता।

[६]

अँधेरी रात थी, पण्डितजी के घर के सभी लोग कहीं रिश्तेदारी में गये थे। घर पर मैं और पण्डितजी ही थे। पण्डितजी तो खर्राटे की नींद ले रहे थे; मगर मुझे नींद कहाँ। बार-बार घर का चक्कर लगाता रहा। चोरों ने समझा, आज सन्नाटा है। घर के नौकर को मिलाकर सारा भेद ले लिया था। मैं आहट पाकर पिछवाड़े गया, तो

देखा कि एक दरवाजा और खुला हुआ है। और कुछ आदमी वहाँ खड़े होकर चौकन्नी आँखों से इधर-उधर देखते हुए धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। मैं उनकी बातें न सुन सकता था; क्योंकि वहाँ से दूर था। थोड़ी देर में देखा, तो कोई भीतर से थाली-लोटा, सन्दूक वग़ैरह निकाल-निकालकर बाहर के आदमियों को दे रहा है। अब तो सब बातें मेरी समझ में आ गईं। मैं बड़े जोरों से भूँकने लगा। इस पर चोरों ने मुझ पर ढेले फेंकने शुरू किये; मगर मुझे उन ढेलों की चिन्ता न थी। स्वामी का घर लुटा जा रहा है, भला यह कैसे देखा जाता! दौड़ा हुआ बरामदे में पण्डितजी के पास गया। और उनकी चादर दाँतों से खींचने लगा। इस पर उन्होंने गुस्सा होकर मुझे दो-तीन लातें जमा हीं तो दीं; पर मैं बाज न आया। फिर चादर खींची और जोर-जोर से भूँकने लगा। बार पण्डितजी की नींद खुल गई। अब उनको किस तरह समझाऊँ कि तुम्हारा घर लुटा जा रहा है। बार-बार पिछवाड़े जाता, और उनके सामने आ-आकर जोरों से भूँकने लगता। इससे मेरी यही मन्शा थी कि पण्डितजी पिछवाड़े चलकर देखें कि उनका घर लुटा जा रहा है और उसके बचाने का प्रयत्न करें। मेरी चुस्ती से चोरों की हिम्मत न पड़ती थी कि सामान लेकर भाग निकलें। मैं रास्ता रोके हुए था। दूसरे सवेरा होने में थोड़ी ही कसर थी। इसलिए सब माल-असबाब उसी पासवाले गढ़े में डुबोते जाते थे। उनकी मन्शा शायद यही थी कि दूसरी रात में सब माल-असबाब उठा ले जायँगे। भला गढ़े के अन्दर कौन ढूँढ़ने जाता है!

मुझे बार बार गुस्सा आता था कि पण्डितजी की बुद्धि पर आज पत्थर क्यों पड़ गया है। वे मेरे इशारे क्यों नहीं समझ रहे हैं। सन्तोष यही था कि माल अभी बाहर नहीं गया था। आखिर मुझे एक उपाय सूझ गया। पलंग के नीचे पण्डितजी की लाठी पड़ी हुई थी। उसे मैंने मुँह में उठा लिया और पिछवाड़े की तरफ़ बढ़ा। अब पण्डितजी मेरा इशारा समझ गये। तुरन्त लाठी लेकर पिछवाड़े पहुँचे तो देखते हैं कि

चोर सारा माल-असबाब उड़ाये लिये जा रहे हैं। बुरी तरह घबड़ा उठे! उनके मुँह से केवल इतना निकला—चोर! चोर!!

चोर का नाम सुनते ही 'पकड़ो! पकड़ो! आ पहुँचे, आ पहुँचे।' की आवाज़ें चारों ओर से आने लगीं। दम-भर में गाँव के सब लोग लाठियाँ ले-लेकर इकट्ठे हो गये; मगर चोरों का पता नहीं था।

अब यह फ़िक्र हुई कि चोर क्या-क्या ले गये। पण्डितजी के तो होश-हवास ही ठिकाने न थे। होश आने पर पण्डितजी ने घर के अन्दर जाकर देखा, तो सब कुछ ग़ायब था। सिर पर बिजली-सी गिर पड़ी। लोगों ने उन्हें सँभाला और समझाने लगे—भैया इतना छोटा जी मत करो। रुपया-पैसा हाथ का मैल है। इसके जाने की क्या चिन्ता। लेकिन पण्डितजी बराबर हाय-हाय करते जाते थे। मेरी ओर कोई ताकता भी न था। मैं दौड़-दौड़कर गढ़े के पास जाता और ज़ोरों से भूँकता। फिर आता और पण्डितजी के पैरों पर मुँह रखकर पूँछ हिलाता; पर पण्डितजी पैर खींच लेते थे। पैर खींच लेना तो कोई बात न थी, वह गुस्से में आकर लातें भी जमा देते थे; मगर मैं अपना काम बराबर किये जाता था। कब तक कोई इस इशारे को न समझेगा?

सभी तरह के लोग थे। कुछ लोग पण्डितजी को तसल्ली दे रहे थे, तो कुछ लोगों को हँसी उड़ाने की सूझ रही थी। कह रहे थे, इसी से कहा गया है कि अपनी कमाई में से कुछ-न-कुछ दान अवश्य करना चाहिए। जो लोग सब कुछ अपने-आप हज़म करना चाहते हैं, उनका यही हाल होता है। पटवारी ने सलाह दी—पण्डितजी, पुलीस को इत्तला कर दीजिए। शायद कुछ पता लग जाय। चौधरी बोले—अजी, पुलीस का ढकोसला बहुत बुरा होता है। वे भी आकर कुछ-न-कुछ चूसते ही हैं। मैंने तो इतनी उम्र में सैकड़ों बार इत्तलाएँ की; मगर चोरी गई हुई चीज कभी न मिली।

पण्डितजी ने दिल कड़ा कर उत्तर दिया—हाँ चौधुरी, तुम ठीक कहते हो। तक़दीर से उठी हुई चीज़ फिर कहाँ मिलती है। इधर तो ये

बातें हो रही थीं, उधर मेरा काम जारी था। कुछ लोग मेरी हरकत देखकर कहने लगे—देखो, पण्डितजी के साथ-ही-साथ कुत्ता भी घबड़ा गया है। पण्डितजी समझदार होने के कारण शान्त हैं, मगर यह बेसमझ कुत्ता बौखला उठा है। ये बातें सुनकर मुझे उन पर हँसी आती थी। बेसमझ ये सब हैं कि मैं। घण्टों से इशारे कर रहा हूँ, पर किसी की समझ में बात नहीं आती। फिर भी अपने को समझदार कहते हैं? क्या कहूँ, कहीं मैं भी आदमी होता, तो दिखा देता।

एकाएक मुझे एक उपाय सूझ गया। मैं भीड़ को चीरता हुआ पानी में कूद पड़ा और एक दम नीचे घुसकर तह तक पहुँच गया। संयोग से एक कटोरी मुँह में आ गई। उसे लेकर बाहर निकला, तो मेरी बात सबकी समझ में आ गई। फिर क्या था, कई आदमी पानी में कूद पड़े, और थोड़ी देर में सब सामान मिल गया। पण्डितजी इतने खुश हुए कि मुझे बार-बार उठा-उठाकर छाती से लगाने लगे। सब यही कहते थे कि कुत्ते में ऐसी समझ बहुत कम देखने में आई है। ज़रूर यह पूर्व-जन्म में कोई विद्वान् रहा होगा। किसी पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए इस योनि में आया है। एक महाशय बोले—पुराने ज़माने में जानवर आदमियों की तरह बातें करते थे, और आदमियों की बातें समझ भी जाते थे।

इस पर चौधरी बोले—बिलकुल सत्य कहते हो भाई! रामायण में लिखा है—एक कुत्ते ने श्री रामचन्द्रजी से अपनी कहानी कही थी। एक दिन श्री रामचन्द्र का दरबार लगा हुआ था, छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सब जी खोलकर अपना-अपना हाल सुना रहे थे, कि इतने में एक कुत्ता भी आ पहुँचा और हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया।

श्री रामचन्द्रजी ने पूछा—तू क्या कहना चाहता है?

कुत्ते ने कहा—भगवन्! आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। इसलिए उचित समझता हूँ कि आपके सम्मुख आपकी प्रजा को अपने अनुभव की कुछ बातें समझा दूँ, जिससे वे अपने जीवन में बहुत-सी बुराइयों से बच जायें।

कुत्ते की यह ज्ञान से भरी हुई बातें सुनकर सब लोग चकित हो गये। दरबार में सन्नाटा छा गया।

श्री रामचन्द्रजी बोले—तुम्हारा यह विचार सराहने योग्य है; अगर सभी लोग इस तरह के ज्ञानोपदेश किया करें तो मनुष्य का उससे बड़ा उपकार हो सकता है। पहले तुम यह बताओ कि तुमने यह कैसे जाना कि तुम आज ही मर जाओगे?

कुत्ते ने उत्तर दिया—महाराज, यह तो मैं नहीं बतलाना चाहता था; लेकिन आपने पूछा है तो मुझे बतलाना ही पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है। आप कृपा कर गुण नामक ब्राह्मण के लड़के को बुलाकर पूछिए कि उसने आज मुझे निरपराध क्यों लाठी से मारा? अब हुक्म हो तो मैं बैठ जाऊँ, और बैठकर बातें करूँ; क्योंकि मेरी कमर टूट गई है और अब मैं खड़ा नहीं रह सकता। चोट ऐसी गहरी पड़ी है कि जान पड़ता है, आज ही मेरा अन्त हो जायगा।

थोड़ी देर में सिपाहियों ने अपराधी को लाकर खड़ा कर दिया। जब उससे पूछा गया कि तुमने कुत्ते को क्यों मारा, तो उसने हाथ जोड़कर कहा—दीनबन्धु, मैं अपनी राह चला जा रहा था। बीच रास्ते में यह कुत्ता बैठा था। मैंने इसे हटने के लिए कई बार कहा; मगर यह हटा नहीं। इस पर मुझे गुस्सा आया और मैंने एक लाठी तानकर जमा दी।

श्री रामचन्द्रजी ने पूछा—अगर यह कुत्ता रास्ते में बैठा था, तो तुम किनारे से क्यों नहीं निकल गये?

गुण—भगवन्, मुझसे यह भूल हुई।

श्री रामचन्द्रजी—और गुस्सा भी आया, तो इतने जोर से क्यों मारा कि कमर टूट गई?

गुण—महाराज, मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। प्रभुजी जो दण्ड उचित समझें, दें!

श्री रामचन्द्रजी ने कुत्ते से पूछा—तू इसे क्या दण्ड देना चाहता है?

कुत्ते ने जवाब दिया—न्याय जो दण्ड दिलाये, वह दिया जाय।

श्री राम०—हम उसका फैसला तुम्हारे ही ऊपर छोड़ते हैं।

कुत्ता—तो इसे एक हाथी पर बिठाकर घर भेज दिया जाय और नगर के राजमन्दिर का महन्त बना दिया जाय।

यह सुनकर सब लोग अचम्भे में आ गये। यह दण्ड है या पुरस्कार! श्री रामचन्द्रजी भी यह रहस्य न समझ सके। पूछा—यह क्या बात है कि जिसने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया, उसे तुम यह पुरस्कार दे रहे हो?

कुत्ता—भगवन्, इसे पुरस्कार न समझिए, यह भयानक दण्ड है। यह ब्राह्मण-बालक अच्छे आचरण का होता, तो देवता हो जाता; मगर महन्त होने पर यह कुत्ता होगा।

श्री राम०—यह क्यों?

कुत्ता—यह तो मुझ पर बीत चुकी है। वही कथा कहने के लिए तो मैं आपकी सेवा में आया हूँ। इसके पहले मेरा जन्म भी ब्राह्मण-कुल में हुआ था। मेरे पिता भी एक मन्दिर के महन्त थे। जिस दिन कोई धनी-मानी आदमी मन्दिर में आनेवाला होता, उस दिन तो ठाकुरजी खूब सजाये जाते; मगर जिस दिन कोई आनेवाला न होता, उस दिन मन्दिर का दरवाजा भी न खुलता। एक दिन ऐसा ही कोई रईस ठाकुरजी के दर्शन को आया था। पिताजी ने तरह-तरह की मिठाइयाँ बनवाकर ठाकुरजी का भोग लगाया था। जब वे घर आये तो मैं रो रहा था। माताजी दूध और चावल गर्म कर रही थीं। पिताजी को देखते ही मैं मचल गया कि इन्हीं के हाथों दूध-भात खाऊँगा। पिताजी मुझे बहुत प्यार करते थे। मुझे तुरन्त गोद में उठा लिया और खिलाने लगे। उस समय वे ठाकुरजी की पूजा करके आये थे; इसलिए उनके नहों में घी लगा हुआ था। गर्म दूध से पिघलकर घी उसमे मिल गया। मुझे क्या मालूम था कि ज़रा-से घी मिल जाने के कारण मुझे इतना कठोर दण्ड मिलेगा। मैंने वेद पढ़ा और पढ़ाया, यज्ञ कराये और बड़ी निष्ठा से अपने धर्म का पालन करता रहा

मगर जब यमराज के पास पहुँचा, तो उन्होंने कहा कि एक तो यह पाखण्डी महन्त का लड़का है, दूसरे इसने उसका कमाया हुआ अन्न खाया है, तीसरे ठाकुरजी के चढ़ाये हुए घी को जूठा कर दिया। इसलिए इसे कुत्ते की योनि में भेजा जाय। मैं बहुत रोया ; मगर किसी ने मेरी न सुनी। मैं वही कुत्ता हूँ। अब आप लोग समझ सकते हैं कि मैंने दण्ड दिया है या पुरस्कार।

इतना कहकर कुत्ता बेहोश हो गया। और ऐसा गिरा कि फिर न उठा।

सवेरा हो रहा था, सब लोगों ने अपने-अपने घर की राह ली। कुत्ते की वह कथा सुनकर मुझे अपनी दशा पर बहुत दुःख हुआ। एक समय वह था कि पशुओं के साथ भी न्याय किया जाता था। एक समय यह है कि पशुओं की जान का कोई मूल्य ही नहीं। इसके साथ ही यह सन्तोष भी हुआ कि पशु होने पर भी मैं ऐसे धूर्त महन्तों से तो अच्छा ही हूँ।

पण्डितजी उस दिन से मुझसे और अधिक स्नेह करने लगे। किसी से भेंट होती, तो मेरी ही चर्चा करने लगते। यह कुत्ता नहीं, मेरे पूर्व-जन्म की सन्तान है।

[७]

उन्हीं दिनों गाँव में कई जंगली सूअर आ गये। उनके उत्पात से सारे गाँव में हाहाकार मच उठा। जिस खेत में घुस जाते उसे बरबाद ही करके छोड़ते। किसमें इतनी हिम्मत थी कि उनका सामना करता। शाम ही से रास्ता बन्द हो जाता था। मेरे जी में तो यह उमंग आती थी कि एक बार जान पर खेलकर उन दुष्टों पर झपट पड़ूँ ; पर मेरी कमर अभी तक अच्छी न हुई थी। मैं भला उन भयंकर जन्तुओं से क्या भिड़ता? लाचार था। हाँ, जकिया खूब मोटा-ताजा था, वह हिम्मत करता, तो एकाध को मारकर ही छोड़ता ; पर वह एक ही कायर था। सुअरों की सूरत देखते ही कोसों भागता और जब समझ जाता कि यहाँ तक सुअर न आ सकेंगे, तो गला फाड़-फाड़कर चिल्लाता। सबसे बड़ा खेद तो यह था कि गाँव में सैकड़ों आदमी हैं,

पर किसी में इतना साहस नहीं कि उन्हें ललकारे। कुत्तों को मारने में तो सभी शेर थे; पर सुअरों के सामने सब-के-सब बिल्ली बने हुए थे।

आख़िर एक दिन लोगों ने थाने में जाकर फ़रियाद की। थाने का सबसे बड़ा अफ़सर अच्छा शिकारी था। उसे यह ख़बर मिली, तो एक दिन कई कुत्ते लेकर गाँव में आ पहुँचा। गाँव के सब आदमी तमाशा देखने के लिए जमा हो गये। पण्डितजी भी मुझे अपने साथ लेकर चले। उनका लड़का भी चलने को तैयार हुआ; पर पण्डितजी ने उसे साथ ले चलना मंजूर न किया। बोले—वहाँ क्या मिठाई बँट रही है कि जाकर ले लोगे? कहीं सुअरों के सामने आ गये, तो प्राण न बचेंगे। मैं तो गाँव का मुखिया ठहरा। मजबूर हूँ, तुम जान-बूझकर क्यों अपनी जान जोखिम में डालते हो! यह बातें सुनकर लड़का सहम उठा, और साथ चलने का नाम न लिया।

जब मैं साहब के समीप पहुँचा, तो पहले-पहल मेरी निगाह उन कुत्तों पर पड़ी, जो साहब के साथ आये हुए थे।

वे सब एक गाड़ी पर बैठे हुए थे, जिसे लोग मोटर कहते थे। अपने उन भाग्यवान भाइयों को देखकर मैं गर्व से फूल उठा, मेरी जाति में भी ऐसे लोग हैं, जो इतने बड़े अफ़सर के साथ मोटर में बैठते हैं! सब-के-सब कितने साफ़-सुथरे थे! नहीं तो यहाँ वर्षों से नहाने की नौबत न आई थी। बालों में हज़ारों किलनियाँ भरी हुई थीं। मैं तो अपने भाइयों को देखकर आनन्द से फूला न समाता था, और मूर्ख जकिया उन्हें देख-देखकर ऐसा हाँव-हाँव कर रहा था, मानों उसके लिए और कोई काम ही न था। गाँव के लोग बराबर मना करते, डाँटते, पत्थर मारते; पर वह किसी तरह चुप न होता था। मालूम नहीं, उसके मन में क्या बात थी। क्या वह इतना भी नहीं समझता था कि ये लोग गाँव का अहित करने नहीं आये हैं। नहीं तो क्या गाँव के आदमी उन्हें मार न भगाते। इसके सिवा और क्या कहा जाय कि उसकी मूर्खता थी। मैंने अपनी जाति में यह बहुत बड़ा ऐब

देखा है कि एक-दूसरे को देखकर ऐसा काट खाने को दौड़ता है, गोया उसका जानी दुश्मन हो। कभी-कभी अपने उजड्ड भाइयों को देखकर मुझे क्रोध आ जाता है, पर मैं जब्त कर लेता हूँ। मैंने और पशुओं को देखा है कि आपस में मिलते हैं, एक साथ सोते हैं, कोई चूँ तक नहीं करता। मेरी जाति में यह बुराई कहाँ से आ गई, कुछ समझ में नहीं आता। अनुमान से कह सकता हूँ कि यह बुराई हमने आदमियों से ही सीखी है। आदमियों ही में यह दस्तूर है कि भाई भाई से लड़ता है, बाप बेटे से, भाई बहन से। भाई एक दूसरे की गर्दन तक काट डालते हैं, बेटा बाप के खून का प्यासा हो जाता है, दोस्त दोस्त का गला काटता है, नौकर मालिक को धोखा देता है। हम तो आदमियों के ही सेवक हैं, उन्हीं के साथ रहते हैं। उनकी देखा-देखी अगर यह बुराई हममें आ गई तो अचरज की कौन बात है? कम-से-कम हममें इतना गुण तो है कि अपने स्वामी के लिए प्राण तक देने को तैयार रहते हैं। जहाँ उसका पसीना गिरे, वहाँ अपना खून तक बहा देते हैं। आदमियों में तो इतना भी नहीं। आखिर ये साहब के कुत्ते भी तो कुत्ते ही हैं! वे क्यों नहीं भूँकते? क्यों इतने सभ्य और गम्भीर हैं? इसका कारण यही है कि जिनके साथ वे रहते हैं उनमें इतना फूट और भेद नहीं है। मुझे तो वे सब देवताओं-से लगते थे। उनके मुख पर कितनी प्रतिभा थी, कितनी शराफत थी!

साहब बहादुर अपने कुत्तों को साथ लिये वहाँ पहुँचे, जहाँ सुअरों का अड्डा था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीटी बजाई और सभी कुत्ते चौकन्ने हो गये। उनकी आँखें चमकने लगीं, नथने फड़कने लगे, छातियाँ फूल उठीं, मानों सब-के-सब साहब का इशारा पाने के लिए अधीर हो रहे थे। उनका उत्साह अब उनके रोके न रुकता था।

सुअरों ने भी शायद समझ लिया कि आज कुशल नहीं। एक भी बाहर न निकला। जब गाँववालों ने ईख के खेतों में घुस-घुसकर शोर मचाना शुरू किया, तो एक सुअर बाहर निकला। यह जमघट देखकर वह कुछ घबरा गया। शायद देख रहा था कि किसी तरफ से भाग

निकलने का मौका है या नहीं। एकाएक साहब के कुत्ते उस पर टूट ही पड़े, देखते-देखते सुअर का काम तमाम हो गया, उनकी यह बहादुरी देखकर लोग वाह-वाह करने लगे। मेरे मुँह से भी निकल गया—शाबाश भाइयो! सच्चे मर्द तुम्हीं हो।

अब मेरे दिल में भी उमङ्ग उठी। सोचा—एक-न-एक दिन मरना तो है ही। आज कुछ कर दिखाना चाहिए। आपस में लड़कर या आदमियों के डण्डे खाकर मर जाने में कौन बहादुरी है। मैदान में मर भी जाऊँगा तो नाम तो रह जायगा। इन कुत्तों को भी तो मालूम हो जाय कि इस गाँव में कोई वीर है। इतने में एक दूसरा सुअर सामने से आता दिखाई दिया। विलायती कुत्ते दौड़े। साथ ही मैं भी चला। वे सब चाहते थे कि पहले हम शिकार तक पहुँचे, मैं चाहता था, मैं पहुँचूँ। हम सभी जी तोड़कर दौड़े, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि सुअर पर पहला वार मेरा ही हुआ, और सब कुत्ते पीछे रह गये। अगर सुअर डटकर खड़ा हो जाता, तो शायद मुझे भागना ही पड़ता; मगर वह हम लोगों को देखकर कुछ ऐसा घबराया कि सीधा भागा। फिर क्या था, हमने उसे पीछे से नोचना शुरू कर दिया। सब-के-सब कुछ इस तरह चिमटे कि उसे मार कर ही छोड़ा। अब तो लोगों को मालूम हुआ कि मुझमें भी जीवट है। साहब तो इतने खुश हुए कि उन्होंने मुझे बुलाकर मेरा सिर थपथपाया। पण्डितजी भी साहब के पास ही खड़े थे। मेरा सम्मान देखकर खिल उठे।

साहब ने पूछा—वेल, यह किसका कुत्ता है?

पण्डितजी ने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर, यह मेरे ही यहाँ रहता है।

साहब—आपका कुत्ता बड़ा बहादुर है।

पण्डितजी ने कहा—सरकार का इक़बाल है।

बात पूरी भी न निकलने पाई थी कि एकाएक तीसरा सुअर निकला, और साहब पर झपटा। साहब के हाथ-पाँव फूल गये, यदि एक क्षण की और देर होती तो सुअर उन्हें जरूर मार डालता। उनके

हाथ में बन्दूक तो थी, पर वह ऐसे घबरा गये थे कि उसे चला न सकते थे। मैंने देखा कि मामला नाजुक है, और कुत्ते दूर थे, मैं वहाँ अकेला ही खड़ा था। सुअर से भिड़ना जान-जोखिम था ; पर साहब की प्राण-रक्षा करना जरूरी था। मैंने पीछे से लपककर सुअर की टाँग पकड़ ली। उसका पीछे फिरना था कि साहब सँभल गये और बन्दूक चलाई। सुअर तो गिर पड़ा, लेकिन मुझे बुरी तरह घायल कर गया। घण्टों होश न रहा कि कहाँ हूँ। जब होश आया, तो देखा कि मैं रूई के गद्दे पर लेटा हुआ हूँ और दो-तीन आदमी मेरे घावों को धो रहे हैं।

[८]

साहब के बँगले पर मुझे ऐसी-ऐसी चीजें खाने को मिलने लगीं, जिनका खयाल मुझे स्वप्न में भी न था। पहले कभी-कभी सौभाग्य से कोई हड्डी मिल जाती ; पर अब दोनों वक्त ताज़ा मांस खाने को मिलता है। कभी-कभी दूध भी मिल जाता। खानसामा रोज साबुन लगाकर नहलाता। पहले तो मुझे साबुन का नाम भी नहीं मालूम था; क्योंकि पण्डितजी के यहाँ साबुन लगाने का रिवाज़ न था ; लेकिन जब साहब नौकर से कहते, कल्लू को सोप से नहलाओ, तो वह कोई टिकिया-सी चीज़ लेकर मेरे गोले बदन पर रगड़ता। उस वक्त मेरे बदन से सुफेद फेन निकलने लगता था। ठीक वैसा ही, जैसा दूध का फेन होता है। उस फेन से ऐसी खुशबू निकलती थी कि जी खुश हो जाता था। साहब शाम के वक्त मुझे मोटर पर बैठाकर हवा खिलाने ले जाते। मेम साहब भी साथ होतीं। उस वक्त उनकी बात तो मेरी समझ में न आती ; लेकिन बार-बार कल्लू का नाम सुनकर समझ जाता कि मेरी ही चर्चा हो रही है। मेम साहब कभी-कभी मुझे गोद में उठा लेतीं और मेरा मुँह चूमतीं। उस समय मुझे कितना आनन्द मिलता था, कह नहीं सकता। मैं भी पूँछ हिलाता और उनकी गरदन से लिपट जाता। अगर वह मेरी बोली समझ सकतीं, तो उन्हें मालूम हो जाता कि हम लोग प्यार का जवाब देने में आदमी से कम नहीं हैं।

कुछ दिनों तक मुझे पण्डितजी की याद बराबर सताती रही,

लेकिन धीरे-धीरे सारी पिछली बातें भूल गईं। सुख में दुःख की बातें किसे याद रहती हैं!

एक दिन शाम के वक्त हम लोग सैर करने जा रहे थे, तो क्या देखता हूँ कि बेचारे पण्डितजी चले आ रहे हैं। पण्डितजी को देखते ही मुझे पिछले दिन याद आ गये, मोटर से कूद पड़ा और उनके पैर पर मुँह रखकर पूँछ हिलाने लगा। पण्डितजी ने मेरे सिर पर हाथ फेरा, तो मैंने देखा कि उनकी आँखें डबडबा आई हैं। उनके मुँह पर धूल जमी हुई थी, ओठ सुख गये थे और पैरों पर मनों गर्द जमी हुई थी। कपड़े तो इतने मैले हो गये थे कि साहब का मेहतर भी न पहनता। मुझे उन पर बड़ी दया आ रही थी।

साहब ने पूछा— वेल पण्डित, है तो अच्छी तरह?

पण्डित—सरकार की दया है।

साहब—क्या काम है?

पण्डित—हुजूर, अपने कल्लू को देखने आया हूँ। सरकार, क्या कहूँ, जब से यह चला आया है, मेरे अदिन आ गये। एक क्षण के लिए भी इसकी सुध नहीं भूलती। इसकी जगह खाली देखकर रोया करता हूँ। सरकार, यह मेरे घर का रक्षक था। मुझ पर दया कीजिए।

साहब—तो क्या चाहता है?

पण्डित—यही चाहता हूँ कि सरकार कल्लू की भीख मुझे दे दें। परमात्मा आपका कल्याण करेगा। इसके बिना मैं कहीं का नहीं रहूँगा।

साहब—ओ पण्डित, तुम बड़ा मक्कर करता है, हम यह कुत्ता तुमको नहीं दे सकता। इसके बदले में मेरा कोई विलायती कुत्ता ले जाओ।

मैं इस समय बड़े दुविधे में था। पण्डितजी का प्रेम देखकर इच्छा होती थी कि इन्हीं के साथ चलूँ; पर यहाँ के सुखों की याद करके जी कुछ हिचक जाता था।

साहब ने नहीं कर दी, तो पण्डितजी निराश होकर बोले—जैसी

सरकार की मर्जी। जब बल्लू ही नहीं है, तो विलायती कुत्ता लेकर मैं क्या करूँगा।

यह कहकर पण्डितजी रो पड़े। उस समय मैंने निश्चय किया कि यहाँ रहते हुए भी मैं पण्डितजी के घर की रक्षा करने के लिए रोज चला जाया करूँगा। यहाँ कुत्तों की क्या कमी।

साहब ने कहा—हम जानता है कि तुम इस कुत्ते को बहुत प्यार करता है। और हम तुमको दे देता; लेकिन हम बहुत जल्द अपने देश जानेवाला है। हम इस कुत्ते को अपने साथ ले जायगा। तुम इसका जो दाम माँगो, वह हम दे सकता है।

पण्डितजी ने इसका कुछ जवाब न दिया। साहब को सलाम किया और लौट पड़े। एकाएक उन्हें कोई बात याद आ गई। लौटकर बोले—सरकार, विलायत से कब तक लौटेंगे?

साहब—ठीक नहीं कह सकता; मगर जब हम आयेगा, तो तुमको इत्तला देगा।

अगर साहब ने मेरे विलायत जाने की बात न कही होती, तो पण्डितजी के साथ जरूर चला जाता। उनका दुःख मुझसे न देखा जाता था। पण्डितजी ने एक बार मुझे प्रेम-भरी आँखों से देखा और चले। अब मुझसे न रहा गया। मेम साहब के प्रेम, विलायत की सैर, अच्छा-अच्छा भोजन, सब मेरी आँखों में तुच्छ जान पड़े। मन ने कहा—तू कितना बेवफा है, जिसने तुझे बचपन से पाला, ब्राह्मण होकर भी जिसने तुझे गोद में खिलाया, जिसने कभी डाँट तक नहीं बताई, उसे तू केवल भोग-विलास के पीछे छोड़ रहा है? फिर मुझे कुछ सुध न रहा। मैं बरामदे से कूदकर पण्डितजी के पीछे चल पड़ा; मगर बीस क़दम भी न गया हूँगा कि खानसामा ने आकर मुझे पकड़ लिया और मेरे गले में जंजीर डाल दी। उस समय मुझे इतना क्रोध आया कि मैं खानसामा को काटने लपका; लेकिन गले में जंजीर पड़ी थी, क्या कर सकता था। पण्डितजी की ओर लाचारी की निगाह से देखने लगा। पण्डितजी भी बार-बार पीछे मुड़-मुड़कर

देखते जाते थे। यहाँ तक कि आँखों से ओझल हो गये। उस दिन मैंने भोजन न किया। बार-बार पण्डितजी की याद आती रही।

[९]

यहाँ कुछ दिन और रहने के बाद साहब अपनी मेम के साथ अपने देश चले। मुझे भी साथ ले लिया। रास्ते में क्या-क्या देखा, कहाँ-कहाँ ठहरा, कैसे-कैसे आदमियों से भेंट हुई, यह सब बातें कहने लगूँ, तो बड़ी देर होगी। लगभग एक महीने तक जहाज पर रहा। यह लकड़ी का एक बड़ा ऊँचा मकान था, जो पानी पर तैरता चला जाता था। पहले जब जहाज पर सवार हुआ, तो मुझे बहुत डर लगा। जहाँ तक निगाह जाती थी, ऊपर नीला आकाश दिखाई देता था, नीचे नीला पानी। और उसमें यह लकड़ी का घर बिलकुल ऐसा ही मालूम होता था जैसे आकाश में कोई पतंग उड़ाता जाता हो। कई दिनों के बाद हम एक ऐसे देश में पहुँचे, जहाँ के आदमी लम्बे-लम्बे कुरते पहने हुए थे और औरतें सिर से पाँव तक एक उजले गिलाफ में लिपटी हुई चली जाती थीं। केवल आँखों की जगह बनी हुई थी। मुझे तो अपने ही गाँव की औरतों के लम्बे घूँघट देखकर हँसी आती थी, इनका यह पहनावा देखकर तो मुझे घृणा-सी हो गई। समझ में नहीं आता, यह अपना शरीर क्यों छिपाये रहती हैं। जहाज पर बैठे हुए मुझे बार-बार जकिया की याद आने लगी। कहीं वह भी मेरे साथ होता, तो कितने आराम से कटती। न जाने उस बेचारे पर क्या बीत रही होगी। मगर अच्छा ही हुआ कि वह मेरे साथ न था; क्योंकि यहाँ उससे एक क्षण भी न बैठा जाता। जहाज पर हमारे गाँव की तरफ का एक आदमी भी न दिखाई देता था। सब-के-सब हमारे साहब ही की तरह थे। गाँव में जुदूधू पासी जब कभी शराब पीकर आता, तो कोई उसे पास न बैठने देता। यहाँ जिसको देखता था, वही बोतल से शराब उँडेलकर पीता दिखाई देता था।

एक दिन की बात सुनिए, रात का समय था, मैं फर्श पर लेटा हुआ था कि एकाएक मुझे ऐसा मालूम हुआ, कमरे में कोई गा रहा

है। वहाँ कोई आदमी न था, मैं चौंककर उठ बैठा, और इधर-उधर देखने लगा; पर कोई न दिखाई दिया। अब मुझसे चुप न रह गया। जोर-जोर से भूँकने लगा। मेम और साहब दोनों मेरा भूँकना सुनकर जाग पड़े और मुझे चुप करने की कोशिश करने लगे। उन्हें देखकर मेरी शंका दूर हुई। लेकिन अब भी मेरी समझ में यह बात न आई कि कौन गा रहा था

इसी तरह एक दिन दूसरी घटना हो गई। जब शाम होती थी, सब कमरों में आप-ही-आप रोशनी हो जाती थी। दीवार में एक गोल-सी डिबिया बनी हुई थी, उस डिबिया में एक पीतल की घुण्डी थी। कभी साहब और कभी मेम उस घुण्डी को छू देते थे। बस कमरा जगमगा उठता था। मुझे यह देखकर बड़ा अचम्भा होता। मैं सोचता क्या मैं भी घुण्डी छू दूँ तो इसी तरह रोशनी हो जायगी। अगर कहीं मैं रोशनी कर सकूँ तो सब लोग कितने खुश होंगे। मैं घुण्डी तक पहुँचूं कैसे। वह बहुत ऊँचाई पर थी। आखिर एक दिन मैंने उसको छूने की एक हिकमत निकाली। मै दोनों पैरों से एक कुर्सी को घसीटकर दीवार के पास ले गया और कुर्सी की दोनों बाहों पर खड़ा होकर एक पाँव से उस घुण्डी को छूआ, छूना था कि ऐसा मालूम हुआ, मेरे पाँव में आग की चिनगारी लग गई, और सारी देह में दौड़ गई। मैं कुर्सी से नीचे गिर पड़ा और चिल्लाता हुआ भागा। थोड़ी देर के बाद जब जरा चित्त शान्त हुआ, तो मैं सोचने लगा कि इस घुण्डी में जरूर कोई-न-कोई जादू है। साहब या मेम छुयेंगे, तो उन्हें भी ऐसी ही चोट लगेगी। मैंने निश्चय किया, उन्हें किसी तरह न छूने दूँगा। जब अँधेरा हो गया, और साहब घुण्डी की तरफ़ चले तो मैं उनके सामने खड़ा हो गया। वह मुझे हटाकर घुण्डी के पास बार-बार जाते थे और मैं बार-बार उनका रास्ता रोक लेता था।

आखिर साहब ने मुझे पकड़कर बाँध दिया, और घुण्डी दबा दी। कमरे में उजाला हो गया। उन्हें जरा भी चोट न लगी।

कई दिनो के बाद एक दिन बादल घिर आये और आँधी चलने

लगी। ज़रा देर में सारा आकाश लाल हो गया, और आँधी का ज़ोर इतना बढ़ा कि समुद्र की लहरें बाँसों उछलने लगीं। हमारा जहाज़ लहरों पर इस तरह तले-ऊपर हो रहा था, जैसे कोई शराबी आदमी लड़खड़ाता हुआ चलता है। जैसे शराबी कभी गिरते-गिरते बच जाता है, उसी तरह जहाज़ कभी-कभी इस तरह करवट लेता था कि शंका होती थी कि अब उलट जायगा। सभी आदमी घबराये हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। बिजली इतने ज़ोर से तड़पती थी कि मालूम होता था कि हमारे सिर पर आ गई। बड़ा भयंकर दृश्य था। ऐसी आँधी मेरे जीवन में एक बार आई थी। सैकड़ों मकान गिरने से हज़ारों जानवर मर गये थे। जहाँ-तहाँ हज़ारों उखड़े हुए पेड़ मिलते थे; पर समुद्री आँधी उस आँधी से कहीं प्रचण्ड थी। अब तक तो जहाज़ में उजाला था, सहसा सब दीपक बुझ गये और चारों ओर अन्धकार छा गया। दिन था; पर सावन-भादों की अँधेरी रात के समान।

चारों ओर घबराहट थी। कोई ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था। स्त्रियाँ प्यारे बालकों को छाती से लगाये दबकी-सिमटी खड़ी थीं। मुझे उस अँधेरे में उनकी दशा साफ नज़र आती थी। अवश्य ही कोई भारी संकट आनेवाला था।

एकाएक जहाज़ किसी चीज़ से टकराया, और भयंकर शब्द हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि वह नीचे बैठा जा रहा है। मेरे साहब और मेम दोनों एक दूसरे से मिलकर रो रहे थे। अब मैं समझ गया कि जहाज़ डूबा जा रहा है। यह सब आदमी ज़रा देर में समुद्र के नीचे पहुँच जायँगे, समुद्र जहाज़ की छाती पर चढ़ बैठेगा। शायद वह जहाज़ की गुस्ताखी का बदला दे रहा है। जहाज़ के कान होते, तो मैं कहता—तुम अपनी शक्ति पर कितना घमंड कर रहे थे। कैसा घमण्ड टूट गया! अपने साथ इतने आदमियों को ले डूबे। अपने साहब और मेम के लिए मेरा कलेजा फटा जा रहा था। कैसे उन्हें बचाऊँ; अगर दोनों जनों को अपनी पीठ पर बैठा सकता, तो बिठाकर समुद्र में कूद पड़ता। कहीं तो जाकर पहुँचता। क्या उस पहाड़ का, जिसने जहाज़ का घमण्ड

छोड़ा था, हमें आश्रय न मिलेगा ? लेकिन क्या मैं उन दोनों को पकड़कर उठा न सकता था ? मैं अपने स्वामी को ढाढ़स देना चाहता था। उनके पास जाकर कूँ-कूँ करता, दुम हिलाता ; पर उस घबराहट में उन लोगों की समझ में मेरी बात न आती थी।

प्रतिक्षण जहाज नीचे चला जा रहा था। स्त्रियों और बच्चों की आर्त्त-ध्वनि सुन-सुनकर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते थे। पानी इतने जोर से गिर रहा था, मानों समुद्र आकाश पर चढ़कर वहाँ से जहाज पर गोले बरसा रहा है। ईश्वर ! यह क्या ? जहाज समुद्र के अन्दर चला गया, और मैं पानी में बहा जा रहा था। मेरे साहब और मेम का कहीं पता नहीं ; कोई कहीं बहा जाता था, कोई कहीं। मैं कितनी दूर बहा चला गया, कह नहीं सकता। साहब और मेम को याद करके मुझे रोना आ रहा था। सोचता, मुझे इस वक्त भी वह मिल जाते तो उन्हें बचाने की कोशिश करता।

बारे भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। बिजली चमकी, तो मैंने देखा कि एक मर्द और औरत एक-दूसरे से लिपटे हुए, एक तरफ बहे जा रहे हैं। मैं जोर मारकर उनके समीप जा पहुँचा। देखा तो वह मेरे साहब और मेम थे ! उस वक्त मेरे बदन में न मालूम कितना बल आ गया, मैं तो कभी बलवान न था। मैंने साहब का हाथ मुँह में ले लिया, और हवा के रुख पर चला। दिल में ठान लिया कि जब तक दम रहेगा, इन्हें न छोड़ूँगा। साहब और मेम दोनों बेहोश थे ; मगर जान बाकी थी। उनकी देह गर्म थी। ईश्वर से मनाता था कि किसी तरह दिन निकले। न जाने कितनी बड़ी रात थी। उस घोर अन्धकार में क्या पता चलता। लहरों पर मैं यों थपेड़े खाता, जैसे आँधी में कोई पत्ती। कभी तो बहुत नीचे, कभी ऊपर, कभी एक रेले में दस हाथ आगे, तो दूसरे रेले में पचासों गज पीछे। भला इस तूफान के मुकाबले में मैं क्या करता, मेरी बिसात ही क्या ! जिस पर इस छोटी-सी देह में जान का कहीं पता नहीं। मुझे खुद भय हो रहा था कि कहीं डूब न जाऊँ।

वह रात पहाड़ हो गई। ऐसा जान पड़ता था, कि सूरज भी मारे डर के कहीं मुँह छिपाये पड़ा है। देह इतनी बेदम होती जाती थी कि जान पड़ता था, अब प्राण न बचेंगे; अगर साहब और मेम का खयाल न होता, तो मैं अपने को लहरों की दया पर छोड़ देता, और लहरें एक मिनट में मुझे निगल जातीं। सबसे ज्यादा भय जल-जन्तुओं का था। प्राण मानों, आँखों में थे। क्षण-क्षण पर मालूम होता था, अब मरे!

कह नहीं सकता, यह दशा कितनी देर रही। कम-से-कम चार-पाँच घण्टे जरूर रही होगी। बारे हवा का जोर कुछ कम होने लगा। लहरों के थपेड़े भी कुछ कम हुए और कुछ-कुछ प्रकाश होने लगा। मेरी हिम्मत बँध गई। आकाश पर बादल भी कुछ छटने लगे थे। कुछ दूर पर पेड़ों का झुण्ड दिखाई दिया, जरूर कोई टापू है। मेरा दिल खुशी से उछलने लगा। मैं उन्हीं पेड़ों की ओर चला। अब मैंने देखा कि साहब और मेम एक रेशमी चादर से बँधे हुए हैं। इसी से वे अब तक लिपटे हुए थे। एका-एक मुझे एक छोटी-सी नाव दिखाई दी। उस पर दो-तीन भयानक, काली जंगली सूरतवाले आदमी बैठे हुए थे। उनका रंग कोयले की तरह काला था। मुँह लाल रंग से रँगे हुए थे। उनके सिर पर पत्तियों के ऊँचे टोप थे। वे केवल चमड़े के जाँघिये पहने हुए थे। उनके पास एक-एक भाला था। मैं उन्हें देखकर डर गया और उस वक्त भी भूँक उठा। हम लोगों को देखते ही वे हमारी तरफ़ चले, और हम तीनों को अपनी डोंगी पर बैठा लिया। मैं मारे डर के सूखा जाता था; पर करता क्या! अगर डोंगी पर न बैठता तो घण्टे-आध घण्टे में डूबकर मर जाता; क्योंकि अब मेरे हाथ-पाँव में ताकत न थी। नाव के एक कोने में खड़ा होकर थरथर काँपने लगा, फिर भी पूँछ हिलाता जाता था कि वे सब मुझे भालों से मार न डालें। ऐसे काले भयंकर आदमी मैंने कहीं न देखे थे। उन लोगों ने हमें डोंगी पर बैठाकर उन पेड़ों के झुण्ड की तरफ़ नाव चलाई। जरूर वहाँ आदमी रहते होंगे। कोई घण्टे-भर में डोंगी वहाँ पहुँच गई। समुद्र के किनारे एक ऊँचा पहाड़ था। उसके ऊपर के पेड़ नजर आते थे। पहाड़ के नीचे एक

जगह नाव रुकी। उन्होंने उसे एक पेड़ से बाँध दिया, और साहब और मेम को उतारकर जमीन पर ले गये। उन्हें देखते ही वैसी ही सूरतों की कई औरतें निकल आईं, और सभों ने खुश होकर चिल्लाना शुरू किया। फिर साहब और मेम को उठाया और गाँव में चले। कुछ ऊँचाई पर चढ़कर कई झोपड़ियाँ बनी हुई थीं। यही उनका गाँव था। हम ज्योंही वहाँ पहुँचे, सैकड़ों आदमियों ने मुझे घेर लिया, और मेम और साहब के कन्धे पकड़कर हिलाने लगे। कोई उनकी नाक दबाता था। कोई उनकी छाती पर सवार होकर घुटनों से कुचलता था। मैं डर के मारे दुबका खड़ा था। आवाज़ निकालने की हिम्मत न पड़ती थी। कहीं यह सब साहब-मेम को मार तो नहीं रहे हैं; मगर कोई आध घण्टे के हिलाने डुलाने के बाद दोनों आदमी होश में आये। उनकी आँखें खुल गईं। हाथ-पाँव हिलाने लगे; पर अभी उठ न सकते थे। अब मैं अपनी खुशी को न दबा सका। उनके पास आकर धीरे-धीरे भूँकने लगा। उन काले आदमियों ने अब नाचना-गाना शुरू किया। मालूम नहीं, क्यों इतने खुश थे। उनका नाच भी कितना भद्दा था! उनकी उछल-कूद देखकर मुझे बड़ी हँसी आती थी।

लेकिन मैं बहुत देर तक खुश न रह सका। ज्योंही साहब और मेम बातें करने लगे, उन काले आदमियों ने उन्हें एक कोठरी में क़ैद कर दिया। क़ैद ही करना था, तो समुद्र में क्यों न डूब जाने दिया? रात में हम तीनों ने कभी दाने की सूरत तक न देखी थी। भूख के मारे पेट काँव-काँव कर रहा था। बेचारे मेम और साहब का भी यही हाल होगा। यह सब उनको खाने-पीने को देंगे, या उस काल कोठरी में बन्द करके मार डालेंगे? मेरे लिए तो वहाँ भोजन की कमी न थी। इधर-उधर मांस की बोटियाँ पड़ी हुई थीं। हड्डियों का तो ढेर लगा हुआ था। यह जंगली आदमी मांस ही खाते थे। मैंने वहाँ कहीं खेत नहीं देखे। एक पेड़ के नीचे मांस का एक टुकड़ा देखकर जी ललचाया कि खा लूँ; पर फिर यह खयाल आया कि साहब और मेम कभी के भूखे पड़े होंगे और मैं अपना पेट भरूँ, यह नीचता की बात है।

धीरे-धीरे दिन बीतने लगा। यहाँ बहुत गर्मी न थी। साहब लोग जहाँ कैद थे उसी झोंपड़ी के सामने मैं एक पेड़ के नीचे बैठा देखता रहा कि यह लोग उन्हें कैसे निकालना चाहते हैं। कुछ खाने को देते हैं या नहीं। दोपहर हुआ, शाम हो गई; मगर झोंपड़ी एक बार भी न खुली। दो आदमी बराबर झोंपड़ी के दरवाजे पर बैठे रहे, जैसे पहरा दे रहे हों। धीरे धीरे रात गुजरने लगी; मगर क़ैदखाना न खुला। अब मैंने मन में ठान लिया कि चाहे जैसे हो, एक बार इस झोंपड़ी में जरूर जाऊँगा। सभी झोंपड़ियों में मांस रक्खा था। मैं चुपके से एक झोंपड़ी में घुस गया और मांस का एक बड़ा-सा टुकड़ा उठा लाया। यह लोग मांस चूल्हे पर पतीली में न पकाते थे। आग पर भून लेते थे। मैंने एक बड़ी-सी भुनी हुई टाँग ली और बाहर लाकर पत्तियों में छिपा दिया और सोचने लगा, साहब की झोंपड़ी में कैसे जाऊँ? वह दोनों यमदूत अभी तक वहीं बैठे हैं। जब तक ये हट न जायँ या सो न जायँ, मेरा जाना मुश्किल था। फिर द्वार कैसे खोलूँगा? उसके मुँह पर एक बड़ा-सा पत्थर भी तो खड़ा रखा था। मैं उस पत्थर को कैसे हटा सकूँगा।

इस चिन्ता में बड़ी देर तक बैठा रहा। सारी देह चूर-चूर हो रही थी। बार-बार आँखें झपकी जाती थीं; पर एक क्षण ही में चौंक पड़ता था। इस तरह कोई आधी रात बीत गई। गीदड़ों ने दूसरे पहर की हाँक लगाई। मैं धीरे से और दबे पाँव झोंपड़ी के द्वार पर आया। दोनों यमदूत वहीं जमीन पर पड़े थे। उनकी नाकें जोर जोर से बज रही थीं। कोई दूर से सुनता, तो जान पड़ता, दो बिल्लियाँ लड़ रही हैं। मैं जान पर खेलकर उस पत्थर को खिसकाने लगा। पूरी चट्टान थी। कितना ही जोर पंजों में लगाता; पर वह जगह से हिलती तक न थी। इधर डर भी लगा हुआ था कि जरा भी खटका हुआ, तो यह दोनों जाग पड़ेंगे और शायद मुझे जीता न छोड़ें। मैं सोचने लगा, आखिर इतनी बड़ी और भारी चट्टान यह दोनों कैसे हटा लेते हैं। अब तक मैं उसे उठाने की कोशिश कर रहा था। अब मुझे यह सूझी कि चट्टान को लम्बान में ढकेल दूँ। शायद खिसक जाय। ज्योंही मैंने

भरपूर जोर लगाया, चट्टान जरा-सी आगे को खिसक गई। बस, उसकी कल मुझे मिल गई। कई बार के ढकेलने से चट्टान द्वार से हट गई, बाईं ओर कोई ऐसी चीज लगी थी, जिससे वह दाहने-बायें की ओर न हिल सकती थी। सीधे-सीधे खिसक जाती थी। पत्थर हटते ही मैंने धीरे से द्वार खोला। गोश्त का टुकड़ा निकालकर झोंपड़ी के अन्दर पहुँचा। देखा, साहब और मेम ज़मीन पर बेदम पड़े थे। मैंने उनके पैरों को मुँह से चाटकर जगाया। दोनों घबड़ाकर उठ बैठे और मारे डर के कोने की तरफ़ भागे, मगर मैंने कूँ-कूँ किया, तो समझ गये, कल्लू है। दोनों मेरे गले से लिपट गये और मेरा सिर थपथपाकर प्यार करने लगे। मैंने मांस का टुकड़ा साहब के हाथ में रख दिया। उसकी गन्ध पाते ही दोनों उसे खाने लगे। उस वक्त मुझे जितना आनन्द हो रहा था, कह नहीं सकता। दोनों खाते जाते थे और बार-बार मुझे प्यार करते जाते थे। जब वे खा चुके, तो बचा हुआ टुकड़ा मुझे दे दिया। मैंने उसे नहीं खाया। अब पानी कहाँ से आवे। खाने के बाद पानी पीने की आदत मेरी तो न थी, मगर आदमी तो खाते समय थोड़ा-बहुत पानी जरूर ही पीते हैं। उस वक्त मुझे यह बात याद आई। मैं बाहर निकला और पानी की तलाश करने लगा। वहाँ उस झोंपड़ी के सिवा और किसी झोंपड़ी में किवाड़ न थे। झोंपड़ियाँ खुली थीं, लोग उनके द्वार पर सो रहे थे। मैं एक झोंपड़ी में घुस गया और पानी के लिए कोई बरतन खोजने लगा। मिट्टी या धातु के बरतन वहाँ न थे। जानवरों की बड़ी खोपड़ियों में पानी रखा था, छोटी-छोटी खोपड़ियों में पानी निकालकर लोग पीते थे। मैंने भी एक छोटी खोपड़ी पानी से भरी और उसे दाँतों में दबाये साहब के पास पहुँचा। दोनों पानी देखते ही उस पर टूट पड़े और एक ही साँस में पी गये। मैं खोपड़ी लेकर फिर गया और पानी भर लाया। इस तरह पाँच-छः बार के आने-जाने में मालिकों की प्यास बुझी। दोनों को खिला-पिलाकर मैं धीरे से निकल आया और द्वार बन्द कर फिर चट्टान ज्यों-का-त्यों खिसका दिया। मैं चाहता तो मालिकों को भी उसी तरह निकाल लाता; पर जाता कहाँ। बेगाने

देश में रात को कहाँ भटकते फिरते। यह काले आदमी फिर पकड़ लेते, तो जान लेकर ही छोड़ते ; इसलिए जब तक उस देश को अच्छी तरह देख-भालकर निकल भागने का मार्ग न निकाल लूँ, मैंने उनका यहीं पड़े रहना अच्छा समझा।

यही मेरा रोज का दस्तूर हो गया। मैं दिन-भर इधर-उधर देख-भाल करता। रात को साहब को खिलाता-पिलाता और सो रहता। कोई मुझे पकड़ न सकता था। न कोई भाँप ही सकता था। मैंने इस वक्त तक कभी चोरी नहीं की थी; लेकिन इस चोरी को मैं पाप नहीं समझता; अगर मैं ऐसा न करता, तो साहब-मेम जरूर भूखों मर जाते।

ये काले आदमी इस तरह साहबों को क्यों क़ैद किये हुए थे, यह मेरी समझ में न आता था। शायद वे समझते थे कि ये लोग हमें पकड़ने आये हैं या यह समझते हों कि कोई-न-कोई इनकी तलाश करने तो आयेगा ही। उससे अच्छी-अच्छी चीजें ऐंठेंगे, मगर ढंग से ऐसा जान पड़ता था कि वे साहब और मेम को देवता समझते हैं। वह झोंपड़ी देवताओं का मन्दिर थी; क्योंकि प्रातःकाल सब-के-सब झोंपड़ी के सामने एक बार नाचने जाते थे। शायद यही उनकी पूजा थी। शायद उनका खयाल था कि देवताओं को खाने-पीने की जरूरत ही नहीं होती।

[१०]

उस देश में हम लोग लगभग एक महीना रहे। जंगली लोगों ने साहबों को कभी बाहर न निकाला। बात-चीत भला क्या करते। शायद वे सब समझते थे कि इन देवताओं को बाहर निकाला गया, तो न मालूम उस देश को किस आफ़त में डाल दें। देवताओं को कोई भयानक जीव समझते थे, जिससे नुक़सान के सिवा कोई फ़ायदा नहीं पहुँच सकता।

इस एक महीने में मैंने देश की अच्छी तरह देख-भाल कर ली।

उसके एक तरफ़ तो समुद्र था। पच्छिम तरफ़ एक बहुत ऊँचा पहाड़ था, जिस पर बर्फ़ जमी हुई थी। दक्षिण की तरफ़ पथरीला मैदान था, जहाँ मीलों तक घास के सिवा और कोई चीज़ न थी। यहाँ से भागें भी, तो जायँ कहाँ? मुझे यह फ़िक्र बराबर सताया करती थी। समुद्र के किनारे जंगली लोग बराबर आते-जाते रहते थे; इसलिए उधर जाने में फिर पकड़ लिये जाने का भय था। ऊँचे पहाड़ पर चढ़ना बहुत कठिन था। और फिर कौन जानता है उस पार क्या हो। उस पार पहुँचना भी असम्भव जान पड़ता था। इसी मैदान की तरफ़ भागने का रास्ता था। सौ-पचास कोस भागने पर शायद कोई दूसरा देश मिल जाय, जहाँ के आदमी ऐसे जंगली न हों। यही मैंने निश्चय किया।

एक दिन बड़ी ठंड पड़ रही थी। चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। आज साहब की झोंपड़ी के सामने के दोनों पहरेवाले ठंड के मारे अपनी झोंपड़ियों में आये हुए थे। मैदान साफ़ था। मैंने सोचा इस अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए। ऐसा अवसर फिर शायद ही मिले। जब सब लोग सो गये, तो मैंने पत्थर खिसकाया और झोंपड़ी का द्वार खोलकर दोनों साहबों को बाहर निकलने का इशारा किया। साहब मेरे इशारे खूब समझने लगे थे। दोनों प्राणी तुरन्त निकल खड़े हुए मैं आगे-आगे चला। दो दिन का खाना मैंने पहिले ही से लाकर साहब को दे दिया था। इसकी चिन्ता न थी। बस फ़िक्र यही थी कि हम लोगों को यहाँ न पाकर वे जंगली आदमी हमारा पीछा न करें; इसलिए रात-भर में हमसे जितना चला जा सके, उतना चलना चाहिए। खूब अँधेरा छाया हुआ था मैं तो बेखटके चला जाता था; पर साहबों को बड़ा कष्ट हो रहा था। मेम साहब तो थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठ जाती थीं और साहब के बहुत कहने-सुनने पर उठती थीं।

एक बार मेम साहब झुँझलाकर बोलीं—आखिर इस तरह हम लोग कब तक चलेंगे?

साहब—जब तक चला जाय।

मेम—यहीं कहीं ठहर क्यों नहीं जाते, सबेरे चलेंगे।

साहब—और जो सवेरे पकड़ लिये जायँ तो ?

मेम ने इसका कुछ जवाब न दिया। फिर चलीं; मगर भुनभुना रही थीं कि इससे तो हमारी क़ैद ही अच्छी थी कि आराम से पड़े तो थे। यहाँ लाकर न जाने किस जंगल में डाल दिया कि प्यासों मर जायँ। कहीं बस्ती का नाम नहीं। इस तरह हम लोग कोई आध घण्टे तक चले होंगे कि पीछे मे बहुत से आदमियों का शोर सुनाई दिया। मालूम होता था, सैकड़ों आदमी दौड़े चले आते हैं। मैं समझ गया कि हमारे भागने का हाल खुल गया और वही लोग हमें पकड़ने चले आ रहे हैं। साहब ने मेम से कहा—वही शैतान हैं, अब हम लोग पकड़ लिये जायँगे।

मेम—हाँ हाँ. मालूम तो होता है।

साहब—बेचारा कल्लू यहाँ तक तो लाया अब हमारे नसीब ही फूटे हों, तो वह क्या कर सकता है ?

मेम—हम लोग भी दौड़ें। शायद कहीं कोई ठिकाना मिल जाय।

दोनों आदमी दौड़े। वही मेम साहब जिन्हें एक-एक पग चलना दूभर हो रहा था. दौड़ने लगीं। हिम्मत में इतना बल है! सबसे बड़ी बात यह थी कि पूरब की ओर अब कुछ प्रकाश दिखाई देने लगा था। ज़रा देर में दिन निकल आवेगा, तब हमें यह तो मालूम हो जायगा कि हम जा किधर रहे हैं; मगर साथ-ही-साथ हम दौड़ते जाते थे।

इस तरह आध घण्टा और गुज़रा। अब पौ फटने लगी थी। रास्ता साफ़ नज़र आने लगा; मगर पीछा करनेवाले भी बहुत समीप पहुँच गये थे। उनकी आवाज़ साफ़ सुनाई देती थी। भूमि बराबर होती, तो शायद वह दिखाई भी देने लगते। मैं यह सोचता दौड़ रहा था, अगर सबों ने आ पकड़ा तो हम कैसे अपनी रक्षा करेंगे।

सहसा हमें एक गहरा ग़ार-सा नज़र आया। मैंने सोचा, अगर इस ग़ार में छिप जायँ और उसके मुँह को घास-फूस से छिपा दें, तो

शायद उन काले आदमियों से जान बच जाय, अगर पकड़ लिये गये, तो फिर उसी काल कोठरी में सड़ेंगे ; बच गये, तो दिन-भर में न जाने कितनी दूर निकल जायँगे।

यह सोचकर मैं उस ग़ार के अन्दर घुसा। मेम और साहब दोनों मेरा मतलब समझ गये। मेरे पीछे-पीछे वे दोनों भी ग़ार में घुसे ; पर सब-के-सब डर रहे थे कि कहीं कोई शेर या चीता अन्दर न बैठा हो। मैं आगे था। थोड़ी ही दूर गया हूँगा कि दो दीपक-से उस अन्धकार में जलते दिखाई दिये। मैं ज़ोर से चिल्लाकर पीछे हटा। सामने सचमुच एक शेर बैठा हुआ था। अब क्या करूँ ? मेरे तो जैसे होश-हवास गुम हो गये—न आगे जा सकता था, न पीछे, बस वहीं पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा था। साहब और मेम दोनों बेहोश होकर गिर पड़े। मैं तो भला खड़ा रहा ; पर दोनों जनों की तो जान ही-सी निकल गई। अब मेरे होश ठिकाने हुए। अपना डर जाता रहा। जाकर उन दोनों को सूँघा। मरे न थे। जान बाक़ी थी। सोचने लगा—अब क्या करूँ ? एक आफ़त से तो मर-मरके बचे थे, यह नई मुसीबत पड़ गई ; मगर यह बात क्या है कि शेर अपनी जगह से हिला तक नहीं, कूदकर झपटना तो दूर रहा। चुपचाप मेरी ओर ताक रहा था। मुझे उसकी आँखों में कुछ ऐसी बात नज़र आई कि मेरा ख़ौफ़ जाता रहा। मैं डरते-डरते एक क़दम और आगे बढ़ा, फिर भी शेर अपनी जगह से न हिला। अब मेरे कानों में उसके धीरे-धीरे कराहने की आवाज़ आई। समझ गया, ब ।र । ज़रा और पास गया, तो शेर ने एक दर्द-भरी आवाज़ मुँह से निकाली और अपना अगला दाहिना पैर उठाया। वह बुरी तरह फूला हुआ था। अब समझ में आ गया। इसी वजह से यह महाशय दम साधे बैठे हुए थे। बार-बार पूँछ हिलाते थे, जम्हाइयाँ लेते थे और हम लोगों की तरह कूँ-कूँ करते थे। ज़रूर इसके पाँव में काँटा चुभा हुआ है ; मगर मैं कैसे निकालता। यहाँ भी तो दाँत बिलकुल शेरों ही के-से हैं। पहले तो जी में आया कि यह कुछ कर तो सकते नहीं, इन्हें यहीं पड़ा रहने दूँ। कहीं ऐसा न हो कि काँटा

निकालते ही इनका मिजाज बदल जाय और एक ही जस्त में हम तीनों को चट कर जायँ ; मगर फिर दया आई। ऐसा तो हम लोग कभी नहीं करते कि किसी का एहसान भूल जायँ। यह भी तो हमारी ही बिरादरी का जीव है।

यह सोचकर मैं साहब के होश में आने की राह देखने लगा। बारे थोड़ी देर में उनकी आँखें खुलीं। मुझे शेर के पास बैठे देखकर कुछ हिम्मत हुई। वहाँ से भागे नहीं। शेर ने उन्हें देखकर और भी पूँछ हिलाना शुरू किया और बार-बार अपना सूजा हुआ पंजा उठाने लगा। साहब भी समझ गये कि शेर लँगड़ा है। साहब ने मेम को कई बार झँझोड़ा और जब उन्हें भी होश आ गया, तो दोनों आपस में कुछ देर तक बातें करते रहे। तब साहब ने शेर के पास जाकर उसका पंजा उठाया और धीरे-धीरे काँटा निकाल दिया। शेर का दर्द जाता रहा। उसने साहब के पैरों पर सिर रख दिया और पूँछ हिलाने लगा।

एकाएक बाहर आदमियों के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। मैं समझ गया कि जंगली लोग हमारा पीछा करते हुए यहाँ आ पहुँचे। मैं जाकर द्वार पर खड़ा हो गया। यहाँ तो किसी को आने न दूँगा चाहे मर ही क्यों न जाऊँ। मैं द्वार पर आया ही था कि दस-बारह आदमी लम्बे-लम्बे भाले लिये मुँह पर लाल रंग लगाये सामने आ खड़े हुए और मुझे देखते ही तालियाँ बजाकर खुश होने लगे। खुश हो रहे थे कि अब मार लिया, बचकर कहाँ जा सकते हैं। दो-तीन आदमी द्वार में पैठने की कोशिश करने लगे। उस भाले और ढाल के सामने मेरी क्या चलती। बस खड़ा भूँक रहा था।

अरे! क्या आसमान फट पड़ा! या दो पहाड़ लड़ गये! ऐसे जोर की गरज हुई कि सारी गुफा हिल गई। यह शेर की गरज थी। आदमियों को द्वार पर देखते ही उसने एक जस्त मारी और द्वार पर आ पहुँचा। कुछ न पूछो, उन दुष्टों में कैसी भगदड़ मच गई। भाले और ढालें छोड़-छोड़कर एक दूसरे पर गिरते-पड़ते भागे ; मगर एक को

शेर ने दबोच ही लिया और हमारे सामने ही उसे चट कर गया। मेरे तो राएँ खड़े हो गये और मेम साहब ने आँखें बन्द कर लीं। मैं सोचने लगा, किसी तरह यहाँ से भाग जाना चाहिए। इस भयानक जानवर का क्या ठिकाना। न जाने कब उसका मिज़ाज बदल जाय और हमारी तिक्की-बाटी कर डाले।

कोई घण्टे-भर तो मैं वहाँ जब्त किये बैठा रहा। जब मैंने बाहर आकर देख लिया कि उन आदमियों में से एक का भी पता नहीं, तब मैंने साहब से चलने का इशारा किया। दोनों डरते-डरते निकले और फिर उसी तरफ़ चले। शेर सिर झुकाये हमारे आगे इस तरह चला जा रहा था, जैसे गाय हो। फिर भी मेरा तो यही जी चाहता था कि यह महाशय अब हमारे ऊपर दया करते और हमें अपनी राह जाने देते।

शाम होते-होते हम लोग एक जंगल में पहुँच गये। इतना घना जंगल था कि कुछ सुझाई न देता था। बस शेर के पीछे-पीछे चले जाते थे। एकाएक वह कोई आहट पाकर ठिठक गया। फिर कान खड़े कर लिये और आहिस्ता-आहिस्ता गुर्राने लगा। सहसा सामने एक शेर आ गया। मेरी तो जान निकल गई और साहब और मेम दोनों एक पेड़ की आड़ में दबक गये; मगर उस शैतान ने हमें देख लिया था। वह ज़ोर से गरजकर साहब की तरफ़ चला कि हमारे शेर ने लपककर उस पर हमला किया। दोनों गुँथ गये। हमारे प्राण सूखे जाते थे। कहीं उसने हमारे मित्र शेर को मार लिया, तो फिर हम लोगों की खैरियत नहीं। मैं चाहता तो भाग जाता; पर साहब और मेम को छोड़कर कैसे भागता। पेड़ इतने सीधे और घने थे कि उन पर चढ़ना मुश्किल था। मन में मना रहे थे कि हमारे शेर की जीत हो। कभी वह दबा लेता, कभी यह। कभी पंजों से लड़ते, कभी दाँतों से। दोनों पंजों से लड़ते-लड़ते खड़े हो जाते, कभी यह पीछे ढकेल ले जाता, कभी वह। दोनों के मुँह और बदन से खून बह रहा था, दोनों की आँखों से ज्वाला निकल रही थी, दोनों गरज रहे थे और हम साँस

रोके हुए यह लड़ाई देख रहे थे। घण्टे भर की लड़ाई के बाद आखिर हमारे मित्र की जीत हुई। उसने उसे चित गिरा दिया और पंजे से उसका पेट फाड़ डाला। हम तीनों खुशी से नाचने लगे; मगर हमारे मित्र का भी कचूमर निकल गया था। सारी देह ज़ख्मों से चूर हो रही थी। वहीं लेट गये। हमने भी वहीं रात काटी। खाने का कुछ न मिला। साहब और मेम ने रास्ते में कोई फल खाया था, पर मुझे फलों से क्या मतलब। मुझे तो शिकार चाहिए और उस अँधेरे में कोई शिकार करना कठिन था। मैं उपासा ही रह गया।

दूसरे दिन हम लोग समुद्र के किनारे पहुँचे, मगर अफ़सोस! मैं समुद्र के किनारे किसी शिकार के टोह में था कि हमारे मित्र ने जो थककर एक चट्टान की आड़ में बैठा था धीरे-धीरे कराहना शुरू किया। मैंने जाकर देखा, तो उसकी आँखें पथरा गई थीं। थोड़ी देर में वहीं मर गया। कल की लड़ाई में वह बहुत घायल हो गया था। मैं बड़ी देर तक उसकी लाश पर बैठा रोता रहा और मेम और साहब भी बहुत दुखी हुए; मगर समुद्र के किनारे पहुँचने की खुशी में वह ग़म जल्द भूल गया।

मैं अभी शिकार की तलाश में ही था कि सहसा किसी चीज़ के घरघराने की आवाज़ कानों में आई। ऐसी आवाज़ मैंने कभी नहीं सुनी थी। रेल की आवाज़ सुन चुका था, भक्-भक् भक्-भक्; मोटरकार की आवाज़ भी सुन चुका था। यह आवाज़ उन सभी से अलग थी, जैसे आसमान पर कोई पनचक्की चल रही हो। साहब और मेम आवाज़ सुनते ही आसमान की ओर देखने लगे। मैंने भी ऊपर देखा। कोई बड़ी चील सी उड़ती दिखाई दी! साहब ने अपनी टोपी उतारकर हवा में उछाली, मेम साहब भी अपना रूमाल हिलाने लगीं। दोनों तालियाँ बजाते थे, नाचते थे। मेरी समझ में कुछ न आता था, यह लोग क्यों इतने खुश हो रहे हैं। मगर यह क्या बात है? वह आसमान में उड़नेवाली चिड़िया तो नीचे उतरने लगी। ओह! कितनी बड़ी चिड़िया थी! मैंने कभी इतनी भीमकाय चिड़िया न देखी थी। अजायबख़ाने में

सी-मुर्ग़ देखा था ; मगर वह तो इसके सामने ऐसा था, जैसे उसके सामने कबूतर। देखते-देखते वह नीचे आया और उसमें से दो आदमी उतर पड़े। पीछे मुझे मालूम हुआ कि यह भी एक तरह की सवारी है, जो आदमियों को हवा में लेकर उड़ती है। उन दोनों ने हमारे साहब और मेम से हाथ मिलाया, कुछ बातें कीं और फिर उसी सवारी में आ बैठे। एक क्षण में साहब ने मुझे गोद में उठा लिया और मेरा मुँह चूमकर उसी सवारी में बैठा दिया। फिर मेम और वह दोनों भी आकर बैठ गये। मेरी तो मारे डर के जान सूखी जाती थी। क्या हम हवा में उड़ेंगे ! कहीं यह कल बिगड़ जाय, तो हमारी हड्डी-पसली का भी पता न लगे। मगर साहब बार-बार मेरा सिर थप-थपाकर मेरी हिम्मत बँधाते जाते थे। फिर चारों आदमी मेज़ पर बैठकर खाना खाने लगे। मुझे भी मांस का एक टुकड़ा दिया। मैं खाना खाने में ऐसा लगा कि सारा भय दिल से जाता रहा। शोर इतना हो रहा था कि कान के परदे फटे जाते थे। कभी-कभी वह सवारी इतनी डगमगाने लगती थी कि मेरा कलेजा काँपने लगता था। कई बार तो वह करवट हो गई, और मुझे ऐसा लगा कि यह उलटा चाहती है, चिल्लाने लगा ; लेकिन ज़रा देर में वह सँभल गई। हम एक रात और एक दिन उसी सवारी में रहे। कभी तो वह इतनी ऊँची उठती मालूम होती कि सीधे तारों से टक्कर लेगी। साहब और मेम दोनों सो रहे थे ; लेकिन मुझे नींद कहाँ ? मैं तो बराबर 'भगवान्-भगवान्' कर रहा था कि किसी तरह वह संकट टले।

दूसरे दिन प्रातःकाल बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया। वह यन्त्र भँवर में पड़ी हुई किश्ती के समान चक्कर खाने लगा। बिजली इतने ज़ोर से कड़कती थी कि जान पड़ता था, सिर पर गिरी। चमक इतनी तेज़ थी कि आँखें झपक जाती थीं। यन्त्र कभी दायें करवट हो जाता, कभी बायें। कभी-कभी तो उसके पहिये रुक जाते, और जान पड़ता। वह नीचे की ओर गिरा जा रहा है। चारों आदमी घबड़ाये हुए थे और ईश्वर-ईश्वर कर रहे थे। मेम साहब तो आँखों पर रूमाल रखे

रो रही थीं। घबड़ाया मैं भी कुछ कम न था; मगर मेम साहब के रोने पर मुझे हँसी आ गई। पूछो, उनके रोने से क्या तूफ़ान चला जायगा? वह समय रोने का नहीं, दिल को मजबूत करके ख़तरे का सामना करने का था; लेकिन समझाता कौन?

बारे एक घण्टे में अंधड़ शान्त हो गया और यन्त्र सीधा चलने लगा। दोपहर होते-होते वह एक बड़े मैदान में उतरा, जहाँ झण्डियाँ गड़ी हुई थीं और उसी तरह के कई और यन्त्र रखे हुए थे। साहब ने मुझे गोद में लेकर उतारा और एक मोटरकार पर बैठकर चले। अब मैंने देखा, तो हम साहब के बँगले की ओर जा रहे थे। मेरे कितने ही दोस्त पुरानी सड़कों पर घूमते नजर आये। मेरा जी चाहता था, इनके पास जाकर गले मिलूँ, उनका क्षेम-कुशल पूछूँ और अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाऊँ; लेकिन मोटर भागी जा रही थी। एक क्षण में हम बँगले पर जा पहुँचे।

मैं अभी पहली नींद भी न लेने पाया था कि मेहतर ने आकर मुझे नहलाना शुरू कर दिया। फिर उसने मेरे गले में एक रेशमी पट्टा डाला और मुझे लाकर साहब के मुलाक़ाती कमरे में एक सोफ़ा पर बैठा दिया। मेम साहब प्लेट में मेरा भोजन लाईं और अपने हाथों से मुझे खिलाने लगीं। उस वक्त मुझे ऐसा अभिमान हुआ कि क्या कहूँ। जी चाहता था, मेरी बिरादरीवाले आकर देखें और मुझ पर गर्व करें। मुझमें कोई सुर्खाब के पर नहीं लग गये हैं। मैं आज भी वही कल्लू हूँ, वही कमजोर, मरियल कल्लू। मगर मैंने अपने कर्तव्य-पालन में कभी चूक नहीं की, सचाई को कभी हाथ से नहीं जाने दिया, मैत्री को हमेशा निबाहा और एहसान कभी नहीं भूला। अवसर पड़ने पर खतरों का निडर होकर, हथेली पर जान रखकर, सामना किया। जो कुछ सत्य समझा उसकी रक्षा में प्राण तक देने को तैयार रहा और उसी की आज बरकत है कि मैं आज इतना स्नेह और आदर पा रहा हूँ।

दूसरे दिन मैंने देखा कि मेरे कमरे के द्वार पर परदा डाल दिया गया है और वहाँ पर एक चपरासी बैठा दिया गया है। शहर के बड़े-

बड़े आदमी मुझे देखने आ रहे हैं। और मुझ पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। अच्छे-अच्छे जेन्टलमैन कोट-पतलून पहने, अच्छी-अच्छी महिलाएँ गाउन और हैट से सुशोभित, बड़े-बड़े सेठ-साहूकार, बड़े-बड़े घरों की देवियाँ, स्कूलों और कॉलेजों के लड़के, फ़ौजों के सिपाही, सभी आ-आकर मुझे देखते हैं और मेरी प्रशंसा करते हैं, कोई फूल चढ़ाता है कोई डंडौत करता है, कोई हाथ जोड़ता है। शायद सब समझ रहे थे, यह कोई देवता है और इस रूप में संसार का कल्याण करने आया है। जेन्टलमैन लोग देवता तो न समझते थे; पर कोई ग़ैरमामूली, चमत्कारी जीव अवश्य समझ रहे थे। कई देवियों ने तो मेरे पाँव छुए। मुझे उनकी मूर्खता पर हँसी आ रही थी। आदमियों में भी ऐसे-ऐसे अकल के अन्धे मौजूद हैं।

दिन-भर तो यही लीला होती रही। शाम को मैं अपने जन्म-स्थान की ओर भागा। मगर ज्योंही नजदीक पहुँचा कि मेरे भाइयों का एक गोल मुझ पर झपटा। अभागे शायद यह समझ रहे थे कि मैं उनकी हड्डियाँ छीनने आया हूँ। यह नहीं जानते कि अब मैं वह कल्लू नहीं हूँ, मेरी पूजा होती है। मैंने दुम दबा ली और दाँत निकालकर और नाक सिकोड़कर प्राणदान माँगा; पर उन निर्दयियों को मुझ पर जरा भी दया न आई। ऐसा जान पड़ता था, इनसे कभी की जान-पहचान ही नहीं है। मैं उनसे अपना दुःख-सुख कहने और कुछ उपदेश देने आया था। उसका मुझे यह पुरस्कार मिल रहा था।

बारे उसी वक्त मेरे पुराने स्वामी पण्डितजी लठिया टेकते चले जा रहे थे। उन्हें देखते ही जैसे मेरे बदन में नई शक्ति आ गई। मैं दौड़कर पण्डितजी के पास पहुँचा और दुम हिलाने लगा। पण्डितजी मुझे देखते ही पहचान गये और तुरन्त मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे दुआ दी और प्रसन्नमुख होकर बोले—तुम तो अब बहुत बड़े ऋषि हो गये कल्लू! तुम्हारी तो अखबारों में तारीफ़ हो रही है। तुम इन गधों के बीच में कैसे आ फँसे?

और उन्होंने डंडा तानकर उन दुष्टों को धमकाया जो अभी तक मुझ पर झपटने को तैयार थे; मगर डंडा देखते ही सब-के-सब चूहों की तरह भागे। मैं पण्डितजी के पीछे-पीछे हो लिया और बचपन के क्रीड़ा-क्षेत्र की सैर करता हुआ पण्डितजी के घर गया। बार-बार जकिया और माताजी की याद आ रही थी। यह आदर-सम्मान उनके बिना हेच था।

पण्डितजी के घर में मेरा पहुँचना था कि पण्डिताइन ने दौड़कर मुझे हाथ जोड़े। ज़रा देर में मुहल्ले में मेरे आने की ख़बर फैल गई। फिर क्या था, लोग दर्शनों को आने लगे और कइयों ने तो मुझ पर पैसे और रुपये और मिठाइयाँ चढ़ाईं। जब मैंने देखा कि भीड़ बढ़ती जा रही है, तो वहाँ से चल खड़ा हुआ और सीधा अपने बँगले पर चला आया।

और तब से कई नुमाइशों में जा चुका हूँ, कई राजाओं का मेहमान रह चुका हूँ। सुना है, मेरी कीमत एक लाख तक लग गई है; मगर साहब मुझे किसी दाम पर भी अलग नहीं करना चाहते। मेरी ख़ातिर दिन-दिन ज़्यादा होती जा रही है। मुझे रोज़ शाम-सवेरे दो आदमी सैर कराने ले जाते हैं; नित्य मुझे स्नान कराया जाता है और बड़ा स्वादिष्ट और बल-बर्द्धक भोजन दिया जाता है। मैं अकेला कहीं नहीं जा सकता; मगर अब यह मान-सम्मान मुझे बहुत अखरने लगा है। यह बड़प्पन मेरे लिए क़ैद से कम नहीं है। उस आज़ादी के लिए जी तड़पता रहता है, जब मैं चारों तरफ़ मस्त घूमा करता था। न जाने आदमी साधु बनकर मुफ़्त का माल कैसे उड़ाता है। मुझे तो सेवा करने में जो आनन्द मिलता है, वह सेवा पाने में नहीं मिलता, शतांश भी नहीं।